TIGHT BINDING BOOK

UNIVERSAL
LIBRARY
OU_178112
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H891.433 K81W Accession No. S930

Author पण्डित पुरुषोत्तमदास गौड़ "कोमल"

Title वे चारों 1937

This book should be returned on or before the date last marked below.

वे चारों

[एक उच्च कोटि का मौलिक उपन्यास]

लेखक

पण्डित पुरुषोत्तमदास गौड़ "कोमल"

प्रकाशक

हिन्दी-साहित्य-भण्डार

कर्नलगञ्ज, प्रयाग

य वार]　　　१९३८ ई०　　　[मूल्य ।।।)

प्रकाशक—
गुरुचरण दास अग्रवाल
सञ्चालक—
हिन्दी-साहित्य-भण्डार
कर्नलगञ्ज, प्रयाग

[सर्वाधिकार सुरक्षित]

मुद्रक—
शिशु-प्रेस, प्रयाग

उपहार

भूमिका

साहित्य के इस संक्रान्ति काल में अनेक नये लेखक अनेक नये भावनाओं को लेकर सामने आ रहे हैं। उनमें बहुत से ऐसे हैं, जिनकी प्रतिभा का प्रकाश न तो अधिक प्रकाशवान् है, और न उसमें स्थायित्त्व की शक्ति अधिक मात्रा में है। अतएव यह निश्चय है कि उनकी प्रतिभा का चिराग़ तो कुछ दिनों ही के बाद समय के अंधड़ में बुझ जायेगा। रहेंगे वही, जिनकी प्रतिभा में एक ओजस्विनी शक्ति है, जिनके विचारों में मौलिकता की सृष्टि करने की अनुपम ज्ञान-प्रेरणा है। ऐसी शक्ति और ऐसी ज्ञान-प्रेरणा, जिसकी साहित्य को अपने साहित्यकारों से आवश्यकता हुआ करती है। हर्ष का विषय है, उस शक्ति और उस ज्ञान-प्रेरणा का परिचय इस नवयुवक लेखक श्री पुरुषोत्तमदास गौड़ 'कोमल' में भी मिल रहा है।

जहाँ यह निश्चय है, कि इनकी प्रतिभा-शक्ति में स्थायित्त्व है, वहाँ इनकी रचनाओं से इनकी भावी उन्नति के विकास का भी पर्याप्त रूप में पता चलता है। मुझे तो इनकी रचनाओं को देख कर यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं होता कि, यदि कोमल जी निरंतर अपनी प्रतिभा के विकास का साधन अपने हृदय में एकत्र करते जाएँगे, तो वह दिन दूर नहीं, जब हिन्दी संसार को विवश हो कर इनकी ओर आकृष्ट होना पड़ेगा। मेधावी नवयुवक जितनी ही अधिक संख्या में साहित्य के रंगमंच पर आएँ, उतना ही अधिक अच्छा। हम कोमल जी का खुले दिल से अभिनंदन कर रहे हैं और चाहते हैं कि वह अपनी सम्पूर्ण शक्तियों के साथ हिन्दी के रंगमंच पर आएँ।

कोमल जी युवक हैं। उनके हृदय में ज्ञान की लिप्सा है। वह चाहते हैं कि मैं साहित्य-देवता के चरणों में अपने जीवन की आराधना समर्पित करूँ। उनकी इस प्रकृति प्रवृत ने ही उन्हें साहित्य-मन्दिर की ओर खींच लाया है। वह अपनी इस साहित्यिक आराधना को सजीव बनाने के लिये हर समय

संलग्न भी रहा करते हैं। उनकी इस संलग्नता का यह परिणाम है कि थाड़े ही दिनों में उनकी पाँच-छः पुस्तकें हिन्दी संसार के सामने आ गईं। हिन्दी-संसार भले ही उन्हें न जानता हो, पर वह साहित्य-देवता के चरणों में बराबर अपने हृदय के दल-फूल बिखेरते जा रहे हैं। उनकी इस संलग्नता को देख कर यह तो कहना ही पड़ेगा कि किसी दिन उनकी यह आराधना अवश्य पूरी होगी, किसी दिन वह अपनी साधना-शक्ति के सहारे अवश्य हिन्दी-संसार को अपनी ओर आकृष्ट करेंगे।

कोमलजी की कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उनमें अछूत के पत्र, अश्रुकण, परीरानी, काठ का पुतला, रँगीली कहानियाँ और एक रात मुख्य हैं। इन पाँचों पुस्तकों के पढ़ने ही से कोमल जी की प्रतिभा शक्ति का पता लग जाता है। इनकी प्रस्तुत पुस्तक, जिसके सम्बन्ध में हम आगे लिखेंगे, अपने ढंग की अनूठी है। कोमल जी को इसमें सब से अधिक सफलता प्राप्त हुई है। इसमें इनकी लेखन-शक्ति का अधिक विकास भी हुआ है। ऐसा विकास हुआ है, जिसे देख कर उनके उन्नति

के क्रम-विकास का पता लग जाता है। यह पुस्तक यद्यपि है तो छोटी, पर है बड़ी अनोखी और कला-पूर्ण। लेखक की कला-पूर्ण वर्णनशैली ने इसे अधिक महत्त्व-पूर्ण बना दिया है।

इसका नाम है, 'वे चारों'। यह एक छोटा उपन्यास है। इसमें चार प्राणियों के जीवन की घटनाओं का उपन्यास रूप में वर्णन है। अंग्रेज़ी आदि दूसरी भाषाओं में इस ढंग के बहुत से छोटे-छोटे उपन्यास प्रकाशित हुए हैं। हिन्दी में भी छोटे उपन्यासों की संख्या कम नहीं। लेकिन वे या तो गन्दे हैं, या उनकी वर्णन-शैली भद्दी और कुरुचि पूर्ण है। कोमल जी ने अपनी वर्णन-शैली को जहाँ कला के ढाँचे से सुन्दर रूप से ढाला है, वहाँ उन्होंने अकथानक की पवित्रता की भी प्रचुर परिमाण में रक्षा की है। सविता का उज्ज्वल चरित्र किसी भी महिला के लिए अनुकरणीय है। सविता ही नहीं, अन्यान्य पात्रों का चरित्र भी बहुत सुन्दर और ध्यान देने के योग्य है। पात्रों के चरित्र-चित्रण में भी लेखक ने अधिक स्वाभाविकता से काम लिया है। पुस्तक में कहीं ऐसा कोई स्थल नहीं, जहाँ लेखक ने स्वाभाविकता का अतिक्रमण किया हो। स्वाभाविकता और पात्रों का चरित्र-

चित्रण ही तो उपन्यास की जान है। इस मानी में लेखक को अपनी इस पुस्तक में अधिक सफलता प्राप्त हुई है। यदि हिन्दी-संसार ने लेखक की इस सफलता का उचित सम्मान किया, तो उसे इससे एक तरह का प्रोत्साहन ही मिलेगा।

लेखक की इस सुन्दर रचना पर मैं इन्हें हृदय से बधाई देता हूँ, और मुझे पूर्ण आशा है कि हिन्दी-संसार में इस पुस्तक का समुचित स्वागत होगा।

कटरा, प्रयाग
१२-१-३५।

—श्रीनाथसिंह

वे चारों

—एक—

यौवन के मादक समीर ने दोनों की आँखों में उन्माद के दो बूँद टपका दिये। दोनों सिहर उठे—नस-नस में चंचल जीवन दौड़ने लगा !! रग-रग में एक भयंकर आँधी, हृदय के कोने-कोने में एक अल्हड़ भावना !! आँखें बदल गईं ! उनका प्रकाश ! उसमें कोई जादू सा घुल गया। जो चीज़ सामने आती, वही मानो मीठे शर्बत की एक प्याली सजाकर प्यार से आगे बढ़ा रही हो—वही मानो मस्ती का एक अनोखा राग गाकर हृदय

में वह उन्माद पैदा कर रही हो जो आंखों में मीठी निद्रा बिछा कर मनुष्य को बेसुध-सा कर देता है! ओह! इसी का नाम तो है यौवन—इसी को तो कहते हैं यौवन का पागल उन्माद!! दोनों को अपने मीठे बचपन की, सुनहरी दुनिया बिल्कुल विस्मृत सी होगई!!

प्रेम! हाँ सचमुच प्रेम की भावना, यौवन के मीठे घड़े, अपने ऊपर उँडेलकर हृदय को अचेतन्य सा कर देता है। उस समय आँखें क्या चाहती हैं, हृदय क्यों तड़पता है, जिगर क्यों टूक-टूक होकर आखों में आँसू के रूप में नाचने लगता है? केवल प्रेम के लिये! प्रेम नस-नस में घुल जाता है—आँखों की पुत-लियों में समा जाता है! श्मशान में, हरी भरी बाटिका में, जंगल के सुन सान प्रकृति की छाती पर तारों से भरे हुये नीले गगन के पट पर, पृथ्वी के अंचल पर, प्रकृति की गोद में खेलने वाले पौधों-पत्तियों पर, सर्वत्र, यदि कुछ आँखों को दिखाई देता है, यदि किसी का अस्तित्त्व प्रकाश बन कर पागल—पुतलियों में समाता है तो प्रेम का!! सचमुच प्रेम एक नशा है! इसी नशे की खुमारी में तो उस दिन एक ने दूसरे को बड़े प्यार से पुकारा—"सविता!" उसने भी उसी मिठाई से उत्तर दिया—"क्या सुशील?"

सायंकाल का समय था! गोधूलि के ललाट पर पूर्णमासी

का चन्द्रमा ! ऐसा मालूम होता था, मानो अन्धकार पर विजय प्राप्त करने की ख़ुशी में वह कई दिनों से उत्सव मनाने का उपक्रम कर रही हो ! वायु धीरे-धीरे चल रही थी ! नदी में छोटी-छोटी लहरियाँ भी उठ रही थी ! ऐसा जान पड़ता था मानो वायु ने नदी के हृदय में गुदगुदी भर दी हो और वह अपनी हँसी छोटी-छोटी उच्छश्रृंखल लहरियों के रूप में प्रकट कर रही हो !! उन लहरियों की ओर एक आँख उठा कर, सुशील ने नौका का डाँड सँभालते हुये कहा—सविता ! देखो तो इन लहरियों की ओर !! ये मूक हैं—अपनी व्यथा प्रकट करना नहीं जानतीं—पर इनकी इस उच्छश्रृंखलता को देख कर क्या कोई यह नहीं कह सकता कि ये भी बेचैन हैं—इनके हृदय में भी वेदना की एक ऐसी संगीत है, जो भावुक दिलों को थोड़ी ही देर में घायल बना देती हैं !! देखो न, इनकी दौड़ धूप !! उठती हैं और थोड़ी देर चल कर फिर मिट जाती हैं !! कहाँ जाना चाहती हैं, कौन जाने सविता कैसी विवशता है !!

वायु ने सविता के कपोलों पर उसके बालों को बड़ी बेरहमी सेबिखेर दिया—सविता ने उसे हाथ से सँवारते हुये उत्तर दिया—न कहो सुशील ! वेदना किसके हृदय में नहीं है !! सारा संसार वेदना की वेदी पर बैठ कर करुणा से सिसकता हुआ नज़र आ रहा है ! जंगल में जाओ, पहाड़ों पर घूमों, वृक्षों से पूँछो,

फूलों से सवाल करो, सभी तो विषाद के अंचल से मुँह ढाँप कर दुःख की आहें भरते हुये दिखाई देते हैं ! देखो न, इस नदी की छाती पर ही !! ये छोटी-छोटी लहरियाँ तुम्हारे मन में वेदना की सृष्टि कर रही हैं। और तुम अपने को बिलकुल भूल से गये हो ! इसीलिये तो तुम्हें यह खबर तक न रही कि पूर्व का चाँद, पश्चिम की ओर कितना आगे बढ़ गया !!

सुशील चौंक पड़ा ! मानो गहरी नींद से सहसा जग पड़ा हो। उसने नाँव को नदी की छाती पर रोक कर कहा—"सचमुच सविता, अधिक रात बीत गई ! हम तुम दोनों अभी इतने स्वतन्त्र नहीं हैं कि इतनी रात और इतनी देर तक एकान्त में, परिभ्रमण किया करें !! हमारी, तुम्हारी यह थोड़ी सी स्वतन्त्रता भी तो चोरी से है—छिप कर है ! कौन जाने, यह भी छीन ली जाय !" ओह क्या सचमुच हम दोनों अलग हो जायँगे—एक दूसरे से बहुत दूर निर्दयता-पूर्वक फेंक दिये जायँगे !! हाय री विवशता !!.....!

सुशील कहते-कहते रुक सा गया, उसके हाथ से डाँड़ छूट गये, वह अचेत होकर नाँव पर गिरना ही चाहता था कि सविता ने उसे अपनी भुजाओं के अञ्चल में रोक लिया ! कुछ देर के बाद जब सुशील जगा तो सविता आँखों में जिगर के टुकड़े भर कर कहने लगी—"चिन्ता न करो सुशील ! देखो,

ऊपर आकाश में चन्द्रमा है और नीचे नदी का अगाध जल हमारे-तुम्हारे प्रणय-सूत्र से संसार चाहे भले ही अनभिज्ञ रहे, परन्तु प्रकृति की मौन गोद की यह रहस्यमयी रचना सार्थकता से खाली नहीं जा सकती ! हम तुम दोनों एक होकर के भी, समाज की आँखों में दो हैं ! यदि समाज, अपनी संकीर्ण भावना से रोके, हम दोनों के जीवन मार्ग पर बिछाने का साहस करेगा तो उसकी छाती पर अत्याचार की एक कहानी भी लिख उठेगी सुशील !!

युवक ने प्यासी आँखों से सविता की ओर देख कर जवाब दिया—सचमुच सविता !! क्या प्रकृति के इस जन-शून्य संसार में की हुई यह प्रतिज्ञा जीवन को सुखी करेगी। क्या यह चाँद और जल की ये छोटी-छोटी लहरियाँ प्रेम की प्रतिज्ञा को कान लगा कर सुन रहीं हैं ? अच्छा देखें, जीवन मर्कट को नचाने-वाला मेरा यह मदारी मेरे जीवन को किस ओर ले जाता है ! चलो, अब लौट चलें, रात अधिक बीत गई है !"

सुशील ने नाँव का रुख फेर दिया। थोड़ी देर में नाँव किनारे पर जा लगी। दोनों नाँव से उतर कर दो ओर को चल दिये ! पर दोनों का हृदय, एक दूसरे के प्रेम तार में बँधा हुआ एक दूसरे के साथ ही था !!

———

—दो—

तारापुर गाँव में एक टूटा हुआ खँडहर है। खँडहर बहुत पुराना है उसकी मिट्टी की दीवालें अब तक खड़ी हैं। दीवालों के ऊपर तथा नीचे छोटी-छोटी घासें उग आई हैं। कभी-कभी उस खँडहर की मालकिन बुढ़िया घासें खोद कर भूमि साफ़ भी कर दिया करती है। तारापुर गाँव के ज़मींदार बाबू विक्रमसिंह ने कई बार उस खँडहर को गिरा देने का विचार किया। पर जब वे विचार करते तो बुढ़िया उनके सामने हाथ जोड़ कर घुटने

टेक देती। कहती, 'बाबू इसे न गिरावो, यह मेरे उनकी निशानी, है। मेरा सुशील अभी छोटा है; बड़ा हो जायेगा तो फिर से उसकी बुनियाद डालेगा।' विक्रम को दया आ जाती। सोचते बुढ़िया है, मेरा काम करती है—मेरे बच्चों को टहलाती है, इसका चित्त दुखाना ठीक नहीं! कौन जाने इसके गांत्रों का कैसा अभिशाप पड़े!! और फिर उसका वह सुशील तो है—बेचारी उस पर कितना अभिमान करती है! करे क्यों न? वही उसकी आँखों की पुतली है। वही उसके जिगर का लाल है! विक्रम बाबू चुप हो जाते!!

बुढ़िया बड़े सुख से रहती उसके जीवन के दिन और रातें बड़े सन्तोष से बीतती हैं। वह दुःखी है तो क्या? गरीब है तो क्या? दुःख और सुख तो संसार की परिस्थितियाँ हैं। कभी आती हैं तो कभी जाती हैं! कभी मनुष्य का जीवन उनसे उल्लास भरा हो जाता है तो कभी गहरा विषाद उसे चारों ओर से घेर लेता है! कभी प्रभात का सुनहला प्रकाश उस पर अपना रंग छिड़कता है तो कभी रात का अन्धकार उस पर अपना काला जाल बिछा देता है। एक दिन उसकी भी दुनियाँ थी उसका भी संसार था! तारापुर गाँव के सारे मनुष्य, पण्डित प्रताप नारायण के चरणों में आदर से अपना मस्तक झुकाते थे! पर उनके मरते ही तो वह अनाथ हो गई!! उसकी सारी

सम्पत्ति किसी ने लूट सी ली। अब वह बिल्कुल कंगाल हो गई है। पर फिर भी वह अपने सुशील को देख कर आँखों में अभिमान का भाव भरती है !!

बुढ़िया विक्रम बाबू के बच्चों को खेलाती है—वह खेलाने की नौकरी करती है। विक्रम बाबू इसके बदले उसे आठ रुपये मासिक दिया करते हैं। यही उसकी जीविका है—इसी से वह सुख पूर्वक अपने दिन काटती है। विक्रम बाबू उससे स्नेह करते हैं। उसकी दयनीय अवस्था पर करुणा के आँसू बहाते हैं। उन्हीं की कृपा से वह उनके घर में टिकी हुई भी है! प्रकृति की वह तीव्र है। विक्रम बाबू के घर की स्त्रियाँ सदैव उसकी तीव्र प्रकृति की आलोचना किया करती हैं! कई बार उनकी पत्नी ने स्वयं उनसे कहा—"बुढ़िया को मकान से अलग कर दीजिये! वह ऐसी अभिमान पूर्ण बातें करती है कि सारा शरीर जल जाता है! पर विक्रम बाबू अपनी स्त्री को यह समझा कर शान्त कर देते कि वह समय की सताई है, उसे पड़ी रहने दो! क्या बिगाड़ती है !!"

विक्रम बाबू की इस करुणा का एक और कारण है! बुढ़िया उनके बच्चों को टहलाती है—उनकी प्यारी सविता को जी जान से प्यार करती है। वह सविता के मुलायम बालों में उँगलियाँ डाल कर जब उसे प्यार करने लगती है तो उसे

अपने 'सुशील' की भी सुधि नहीं रहती—वह उसके प्यार में अपने को बिल्कुल तन्मय कर देती है। सविता भी तो उसे ख़ूब चाहती है! जब उसे देखती है तो माँ बाप को छोड़ कर उसके पास दौड़ जाती है! सुशील और सविता भी ख़ूब हिले-मिले हैं! दोनों एक दूसरे को जी-जान से प्यार करते हैं! घण्टों एक साथ खेला करते हैं—ज़रा भी नहीं ऊबते! रात में भी दोनों पास-पास रहने के लिए रोते हैं—चिल्लाते हैं! पर बुढ़िया के फटे चीथड़ों पर, सविता को सोने की आज्ञा कैसे दी जा सकती है!! वह सायंकाल होते ही, बुढ़िया और सुशील से अलग हो जाती! अबोध हृदय!! ग़रीबी और अमीरी का रहस्य क्या जाने? रोते-रोते सो जाती है!!

विक्रम बाबू बुढ़िया को घर से नहीं अलग करना चाहते—उनकी दृष्टि में यह पाप है—घोर अन्याय है!! वह कुछ करे या न करें, पर उनके घर में प्रेम की एक दुनियाँ तो बसी हुई है। वह जब एक साथ बड़े प्रेम से सुशील और सविता को क्रीड़ा करते हुए देखते तो उनकी हिम्मत यह न होती कि वे सुशील की माँ—बुढ़िया की आठ रुपये महीने की जीविका छीन लें! वही तो जीवन का अवलम्ब है सोचते, फूल सा कोमल सुशील भूख की ज्वाला से मुरझा जायगा। बुढ़िया रोते-रोते जीवन को समाप्त कर देगी! पर उन्हीं की भाँति

तो उनके घर की स्त्रियाँ नहीं हैं !! वे तो जल्दी से जल्दी बुढ़िया की यह 'सेवा' उससे छीन लेना चाहती हैं ! इसका कारण यही है कि बुढ़िया स्वाभिमानिनी है—वह किसी को एक भी कड़वी बात अपने कानों में डालना पसन्द नहीं करती।

अभी उस दिन की बात है। विक्रम बाबू की स्त्री से जब उसकी कहा सुनी होगई तो उसने उनकी बातों के जवाब में कह दिया—बहू ग़रीब हूँ तो क्या, पर किसी के हाथ में अपना स्वाभिमान नहीं बेच सकती ! रोटी के झुलसे हुए टुकड़ों पर अपनी पैतृक मान मर्यादा नहीं लुटा सकती ! उससे इसका कहीं अधिक मूल्य है ! ग़रीब भी अपनी इस अधिक मूल्य वाली चीज़ की रक्षा करना जानते हैं ! इसी बात में नोन मिर्च लगा कर विक्रम बाबू की स्त्री ने विक्रम से कहा—बुढ़िया का मिजाज़ अब अधिक बढ़ चला है ! वह बात-बात में लड़ने के लिये तैयार रहती है ! सविता तो बिल्कुल उसके वश में होती जा रही है ! मुझे तो ऐसा जान पड़ता है, मानो उसने सविता पर कुछ जादू सा कर दिया हो !! इसलिये अब मैं बुढ़िया से एक दिन भी यह काम लेना नहीं चाहती—उसे जल्दी से जल्दी घर से अलग कर देना ही अच्छा होगा !!

विक्रम बाबू उसी गाँव में पैदा हुए, उसी गाँव में पले और उसी गाँव में बड़े हुए ! वे बुढ़िया को बहुत दिनों से जानते

हैं। जब उसकी सुख की दुनियाँ थी, जब वह युवती थी, उस समय भी वह उनके घर आया जाया करती थी ! स्वभाव की वह तीखी अवश्य है, पर जादू-टोने की बात उनकी समझ में न आई !! उसके भी तो एक लड़का है, और है फूल सा ! वह दूसरों के बच्चों से प्रेम भी करती है, अपने प्राणों के समान रखती है। फिर यह निर्दय बात कैसी ? पर स्त्री के आग्रह ने अधिक देर तक विक्रम बाबू की दृढ़ता को न टिकने दी। विक्रम बाबू लाचार हो उठे !! आखिर उन्हें बालकों की इस स्वर्गिक झोपड़ी को उजाड़ देना ही पड़ा। पर सुशील सविता और बुढ़िया के हृदय में एक दूसरे के प्रति कितनी ममता है, उसे उनके अतिरिक्त और कौन जान सकता है ?

———

—तीन—

दस वर्ष बाद !

गर्मी का प्रभात काल। वायु धीरे-धीरे चल रही थी। मुकुलों के भार से लदे हुए वृक्ष बड़ी गम्भीरता के साथ हिल रहे थे। आम्र डालियों पर बैठी हुई कोयल बड़े मर्मीले स्वर में 'कुहू कुहू' का राग अलाप रही थी। पर कोयल का वह पागल राग उस युवती के हृदय में कुछ मीठा शर्बत न घोल सकती थी ? वह बाटिका की एक बैञ्च पर बैठी हुई बड़ी तन्मयता से हिन्दी

की एक मासिक-पत्रिका पढ़ने में लगी थी। ऐसा जान पड़ता था मानो बसन्त की इस मादकता से भी बढ़कर, कोई ऐसी चीज़ उस मासिक-पत्रिका के पत्रों में छिपी है, जिसे उसकी आँखें छक-छक कर पी रही हों !!

वह एक कहानी थी! उसी की लाइनों में उसकी आखें उलझी हुई थीं! वह दो बार उसे पढ़ गई, पर उसे विश्वास न हुआ। ऐसा जान पड़ा, मानो उसने कुछ पढ़ा ही नहीं। फिर पढ़ने लगी। कई बार पढ़ गई। पढ़ते-पढ़ते उसकी आँखों में आँसू छलक आये। क्यों? कौन जाने? पर कहानी का मुख्य आधार सूक्ष्म रूप में तो यही था—हम दोनों बचपन की मीठी दुनियाँ में विहार कर रहे थे वह मेरी दुनियाँ, वह मेरा संसार!! जब मैं सोचता हूँ तो इस समय भी मेरी आँखों में एक अभिमान का भाव नाच उठता है! जिसके साथ मैं विहार करता था, वह थी, मेरी एक सखी जमींदार की दुलारी लड़की। मेरी माँ उसे आमोद करती थी। वह इसी की नौकरी करती थी। जमींदार के घर की स्त्रियाँ, हमारी दीनता से घृणा करती थीं। पर जमींदार की मेरी बुढ़िया माँ पर अधिक ममता थी। इसका कारण था, जमींदार की लड़की मेरी बाल-सखी, हम दोनों में अधिक हिल मिल गई थी। वह न तो मेरी माँ से अलग होना चाहती थी और न मुझसे। हम दोनों एक साथ बैठ कर घण्टों

बाल-क्रीड़ा किया करते थे। हम दोनों की उस क्रीड़ा में कितनी पवित्रता थी !! ओह ! उस पर तो स्वर्ग की सारी पवित्र कामनाएँ तक निर्मलता से सहस्रों बार लुटाई जा सकती हैं !! मुझे खूब याद है, उस समय हम दोनों अक्षर लिखना भली-भाँति जान चुके थे !! मात्रायें, हम दोनों नहीं जानते थे, पर वह मेरा नाम लिख लेती थी और मैं उसका। एक दिन जब मैं अपने क्रीड़ा-वृक्ष के नीचे देर से पहुँचा तो मैंने देखा, वहाँ की सारी पृथ्वी पर मेरा तीन अक्षरों का नाम लिखा हुआ है !! ओह ! मिट्टी के वे टेढ़े-मेढ़े अक्षर आज भी मेरी आँखों में प्रकाश बन कर चमक रहे हैं !! किन्तु हम दोनों, स्वर्ग के खिलाड़ियों की वह दुनियाँ अधिक दिनों तक न रहने पाई !! ज़मींदार की स्त्री की कठोरता के कारण मेरी माँ की नौकरी छीन ली गई। वह नौकरी कितनी मिठी थी ? उसके जाते ही तो जीवन की वह मिठाई भी, दुःख के खारे समुद्र में विलीन हो गई !! हम दो अबोध हृदय वाले रोते-रोते एक दूसरे से अलग होगये, पर आज भी उसकी स्मृति; हृदय में ज्यों की त्यों बनी हुई है !! ऐसा मालूम होता है मानो हम अपने क्रीड़ा-वृक्ष के नीचे, उसी पवित्रता के साथ अपनी बाल-सखी के साथ क्रीड़ा कर रहे हैं !!"

युवती कहानी पढ़ कर रोने लगी। उसकी आँखों में आँसू छलछला आये ! उसके हृदय में, उसके कलेजे में एक मीठी पीड़ा सी

उत्पन्न होगई !! यह कहानी है, या सत्य घटना। उसने भी तो अपनी माँ से एक कहानी सुनी थी। पर वह तो कहानी नहीं, सत्य घटना है। तारापुर गाँव में अब तक उस बुढ़िया का खण्डहर खड़ा है !! बुढ़िया उसे खिलाती थी। उसके एक लड़का भी तो था !! लड़के का नाम सुशील था। सुशील से उसकी बहुत बनती थी ! पर जब उसकी माँ की नौकरी छूट गई तो वह गाँव में कई दिनों तक भूखा रहने के बाद अपनी माँ के साथ अन्यत्र चला गया। कहाँ गया ? कौन जाने ! पर कहानी का कथा आधार तो बिल्कुल उससे मिलता-जुलता है ! अक्षर-अक्षर में जीवन की गहरी अनुभूति छिपी हुई है ! ऐसी दर्दीली भाषा, ऐसे चोटीले भाव बिना सच्ची अनुभूति के लिख ही कौन सकता है ? लेखक का नाम भी तो सुशील है ! फिर क्या वही सुशील जिसके साथ कभी वह खेला करती थी। जिसकी इस समय भी विक्रम बाबू कभी-कभी बड़ी करुणा से चर्चा किया करते हैं ! कहते हैं मिट्टी की इन टूटी हुई दीवालों को मैं न गिराऊँगा, इनमें बुढ़िया के हृदय की एक मार्मिक वेदना छिपी हुई है ! उसका लड़का सुशील जब कभी लौट कर अपनी जन्म-भूमि में आएगा तो मैं उसे उसका यह उजड़ा हुआ घर सुपुर्द कर दूँगा !!

युवती चञ्चल हो उठी ! उसके मस्तिष्क में विचारों का बवण्डर सा चलने लगा ! वह कभी कुछ सोचती तो कभी कुछ !

क्या सोचती, कौन जाने ? पर अन्त में उसने यह निश्चय अवश्य किया कि उक्त पत्रिका के सम्पादक को पत्र लिख कर उससे 'सुशील' का पता और परिचय मँगवाए !

युवती ! तारापुर के गाँव के ज़मींदार बाबू विक्रमसिंह की लड़की है। उसका नाम सविता है। वह बनारस में अङ्गरेज़ी की दसवीं श्रेणी में पढ़ती है ! अलग किराये का घर लेकर शहर में रहती है ! विचार भी उसके नये युग के ही हैं ! वह पुरुष और स्त्रियों के समान अधिकार पर घण्टों बड़ी तन्मयता के साथ मन ही मन तर्क-वितर्क किया करती है ! समाज के अविचारों के प्रति, संघर्ष की क्रान्तिकारिणी भावनायें उसके हृदय में उठा करती हैं ! किन्तु उस कहानी को पढ़ने के पश्चात् उसके हृदय का सारा विद्रोह शान्त सा हो गया ! वह बड़ी उत्सुकता से सम्पादक के पत्र की प्रतीक्षा करने लगती है ! कई दिन बीत गये, पर उत्तर न आया ! वह व्याकुल सी हो उठी ! उसके हृदय में चिन्ता की छोटी-छोटी लहरियाँ उठने लगीं। उसका चित्त भी किसी काम में नहीं लगता ! अब वह घूमने भी नहीं जाती ! एक खटका, एक चिन्ता और एक उत्सुकता प्रतिक्षण उसके मानस को कोलाहल मय बनाए रहती है ! वह सोती तो स्वप्न देखती—सम्पादक का पत्र आया है, उसमें सुशील का पता और परिचय लिखा है ! वह अपने

इस अशान्त जीवन से बिल्कुल चञ्चल हो उठी! वह उस कहानी और उसके लेखक 'सुशील' को बिल्कुल भूल जाना भी चाहती! पर हृदय का प्राकृतिक स्नेह! ज्यों-ज्यों वह भूल जाने की चेष्टा करती, त्यों-त्यों उसकी आँखों में स्मृति का गहरा रंग और छिड़क उठता!! उसकी वह उद्विग्नता!' उसमें बड़ी बेकली थी!'

संध्या का समय था। सविता अपने मकान के चौड़े सहन में बैठी हुई चिन्ता की लहरियों से खेल रही थी! उसे ध्यान ही नहीं था कि दाई कब से हाथ में लिफाफा लेकर सामने खड़ी हुई है। उसका ध्यान तो तब भंग हुआ जब दाई ने कहा—"यह चिट्ठी है बीबी, एक बाबू लेकर आये हैं, दरवाज़े पर खड़े हैं!" "सविता" ने चौंक कर पत्र हाथ में लेलिया! वह उसे खोल कर पढ़ने लगी! पर यह क्या? यह तो उसका ही पत्र है! उसने सम्पादक के नाम इसे भेजा था! फिर यहाँ कैसे आया? कौन लेकर आया? क्या यही सम्पादक तो नहीं? सविता थोड़ी देर के लिये चिन्ता में पड़ गई! फिर उसे याद आया, दाई कह गई है, दरवाज़े पर कोई बाबू खड़े हैं! "वह दरवाज़े पर जाकर खड़ी होगई! उसने देखा—"एक युवक"!!

युवक ने अपने दोनों हाथों को नमस्ते के रूप में प्यार से

उठा कर कहा—"क्या आप ही का नाम सविता है क्या आपने ही यह पत्र भेजा था ?"

सविता कुछ सकुचाई ! पर अब तो उसे उत्तर देना ही पड़ेगा ! उसने कहा—"हाँ ! क्या आप उस पत्रिका के सम्पादक हैं ?"

युवक रुक गया। उसके होठों पर एक रहस्य-पूर्ण मुसकुराहट चमक कर विलीन होगई ! थोड़ी देर तक रुके रहने के बाद उसने कहा—"नहीं, मैं सम्पादक नहीं हूँ सविता !! मैं हूँ तारापुर गाँव के उस खँडहर का निवासी, जो कभी मेरी और सविता की बाल-क्रीड़ा से स्वर्ग का महल बना हुआ था !!"

दोनों की आँखों से साथ ही दो बूँद आँसू गिर पड़े ! एक ने पुकारा—'सुशील' ! दूसरे ने उसी स्वर में उत्तर दिया—'हाँ सविता' !

———

—चार—

मई का महीना है। स्कूल-कालेज सभी बन्द हो गये हैं। लड़के लड़कियाँ सभी अपने-अपने घर पर हैं। पर सविता अभी घर न आई। दूसरे वर्ष तो वह अप्रैल के अन्तिम सप्ताह में ही आ जाती थी, पर इस वर्ष तो मई का अन्तिम सप्ताह भी बीत गया। विक्रम बाबू की स्त्री प्रमदा चञ्चल हो उठी। उसका हृदय सन्देह और चिन्ता के झूले पर झूलने लगा। उस दिन, फाल्गुन के महीने में, जब सविता के साथ रहने वाली दाई

तारापुर आई थी तो उसने बात ही बात में प्रमदा से कह दिया था—बहू, बीबी का स्वभाव बदलता जा रहा है, इसलिए इस साल वैसाख की लगन में उनका विवाह कर दीजिए !! मगर केवल इसी बात के लिए प्रमदा ने उसे कितनी फटकार सुनाई थी !! किन्तु आज उसकी बातों की सत्यता प्रमदा को क्षण-क्षण बेचैन करने लगी ! उसकी आँखों को, उसमें एक रहस्यपूर्ण कहानी छिपी हुई सी ज्ञात होने लगी !! यदि वह जानती तो उसे न फटकारती—प्यार से दुलार से, सब बातें पूँछ लेती और सावधान हो जाती ! पर अब उन बातों से लाभ क्या ? प्रतीक्षा के दो चार दिन और बीत गये !! सविता न आई !

माँ का हृदय ! और फिर सयानी लड़की, अकेले परदेश में !! प्राचीन विचारों के समाज में पली हुई प्रमदा चंचल हो उठी। उसने विक्रम बाबू से कहा—"सविता अभी बनारस से नहीं आई। दूसरे साल तो वह अब तक कभी आ जाती थी। क्या बीमार तो नहीं होगई ? मगर बीमार होती तो अपने चित्त का हाल तो लिख कर भेज देती ! नौकर साथ में है ! दाई को ही यहाँ भेज देती ! हाल तो मालूम हो जाता !!

विक्रम बाबू ने चिन्तित होकर कहा—"हाँ, मैं भी यही सोच रहा हूँ! यदि तुम बुरा न मानो तो मुझे यह कहना पड़ेगा कि सविता के न आने में कोई न कोई पाप-पूर्ण रहस्य अवश्य छिपा हुआ है!" उसके पहिले और अब के पत्रों में मुझे आसमान और जमीन का सा अन्तर मालूम होता है! पहिले जहाँ वह अपने पत्रों में वात्सल्य रस के घड़े ढुलकाती थी, वहाँ वह अब नीरसता के साथ कर्त्तव्य पालन करती हुई प्रतीत होती है! ऐसा जान पड़ता है मानो उसका दिल किसी दूसरी ओर खिंच गया है!

प्रमदा काँप उठी! उसकी आँखों के सामने राई की एक एक बात अपना भीषण स्वरूप धारण कर नाचने लगी! उसने तुरन्त आँखों की राह से दो बूँद पानी भूमि पर ढुलका दिए। विक्रम बाबू ने प्रमदा के आँखों में आँसू देख कर कहा—"बस तुम्हें तो प्रत्येक बात में यही रोना ही सूझता है!! सविता तो मर गई नहीं! सम्भव हो मेरा अनुमान ग़लत हो! आज शाम की गाड़ी से मैं बनारस जा रहा हूँ! चिन्ता न करो!"

पाठक! अभी भूले न होंगे! सविता और सुशील जिस समय नदी की छाती पर नाँव में बैठ कर प्रणय प्रतिज्ञा कर रहे थे! उसी समय यहाँ सविता के डेरे पर—विक्रम बाबू चिन्ता मग्न बैठे हुये अनेकों कल्पनाओं का सहारा ले रहे थे! सविता कहाँ गई? उसकी तबियत तो घूमने में नहीं लगती

थी !! और फिर नौ बज चले हैं ! इस समय यह घूमना कैसा ? दाई भी तो ठीक-ठीक पता नहीं बताती ! कहती है, क्या मुझे बता कर गई हैं ? बाबू जी ! मगर उसके स्वर में रुखाई क्यों है ? वह तो बड़ी मिठाई से बोलती थी ! ऐसा जान पड़ता है, मानो वह खीझी हुई है—सविता के सम्बन्ध में किसी भी बात का उत्तर ठीक तरह से नहीं देना चाहती !!

विक्रम बाबू के हृदय में अनेकों प्रकार की छोटी बड़ी विचार लहरियाँ उठ रही थीं ! दस बज गये थे ! ग्रीष्म का महीना, लम्बा सफर ! प्यास से उनके होंठ सूख गये थे ! दाई ने जल पान का प्रबन्ध तो कर दिया था, पर विक्रम बाबू ने उसे हाथ से छुआ तक नहीं ! उधर ज्यों ही दस के घण्टे बजे त्यों ही सविता अपने मकान के दरवाज़े पर आ गई, दरवाज़े पर ही उसे दाई के द्वारा ज्ञात होगया कि विक्रम बाबू आये हैं—नाराज़ होकर छत पर बैठे हुये हैं ! सविता कुछ डरी ! उसका मन थोड़ी देर के लिये कातर सा बन गया पर वह डर और झिझक कैसी ? संसार में सभी घूमते हैं मैं भी घूमने गई थी ! सविता का मन साहसी होगया वह दौड़ कर छत पर जा पहुँची !!

विक्रम बाबू ने सर उठा कर देखा—"सविता" ! सविता ने उन्हें आदर से प्रणाम किया ! विक्रम बाबू ने सविता को

आशीर्वाद देते हुये कहा—"सविता ! तू अब तक कहाँ थी ? घर क्यों नहीं आई ? तुम्हारा कालेज तो बन्द होगया ! तुम्हारे न जाने से घर के सब लोग चंचल हो उठे हैं ! मैं तुम्हें देखने के लिये यहाँ दौड़ा आया ! सोचा, कहीं तुम बीमार तो नहीं पड़ गई ?"

एक साथ ही इतने प्रश्न !! सविता आकुल सी हो गई ! उसके पास इन प्रश्नों का उत्तर भी क्या था ? वह केवल इतना ही कह कर चुप होगई कि घूमने गई थी, पिता जी देर होगई ! विक्रम बाबू ने फिर कुछ न पूँछा ! उनका अनुमान उन्हें सत्य प्रतीत होने लगा ! अब उन्होंने अपनी बात चीत का रुख दूसरी ओर घुमा दिया ! और उस समय बन्द कर, उसे शुरू किया तब जब वे और सविता दोनों खा पी कर शान्त हो चुके थे !!

विक्रम बाबू ने कालेज के पर्चों के सम्बन्ध में बातचीत होते हुये सविता से कहा—सविता ! मैं यहाँ एक आवश्यक विषय में तुम्हारी सम्मति लेने आया हूँ ! तुमने सुना न होगा कि तुम्हारी माता जी इस वर्ष तुम्हारा विवाह कर देना चाहती हैं ! पर इसके पहिले तुम्हारी सम्मति भी तो जान लेना आवश्वक है ! बोलो तुम क्या कहती हो ? क्या इस वर्ष तुम्हारी पढ़ाई बन्द कर तुम्हारा विवाह कर दिया जाय !!

सविता काँप उठी; उसके हृदय के कोने में एक गहरी वेदना

सी दौड़ गई ! वह अभी प्रेम-प्रतिज्ञा करके आई है। एक रात भी तो उसका निर्वाह नहीं हो सका। मगर वह स्वतंत्र है स्वतंत्रता को प्यार करती है। विवाह को वह ऐसा खिलवाड़ नहीं समझती कि जिसके हाथों में जो जब चाहे किसी को सौंप दे ! जीवन का विश्वास हो या न हो। प्रेम की दुनियाँ, दोनों में आबाद हो या न हो ! सौंप देने से तात्पर्य !! वह इसका अवश्य विरोध करेगी ! यदि विवाह का नाम 'सुख' और सन्तोष है, तो वह सुशील को छोड़ कर और किसी के साथ विवाह न करेगी। उसने गम्भीर बन कर उत्तर दिया—पिता जी ! मेरी पढ़ाई न बन्द कीजिये। मैं अभी विवाह न करूँगी !

"अभी विवाह न करोगी !" विक्रम बाबू कह कर चौंक पड़े ! क्यों बात क्या है ? तुम्हारी माँ कहती हैं, कि अब तुम सयानी हो चली हो—समाज के लोग तुम्हें कुमारी देखकर हम पर उङ्गली उठाते हैं।"

"पर मैं समाज को डरती नहीं पिता जी—सविता ने कहा—समाज के लोग ज़ाहिल हैं बेवक़ूफ़ हैं !! वे न तो विवाह को समझते हैं और न उसके वास्तविक अस्तित्व को ! उनकी समझ में विवाह भी खाने पीने की चीज़ है, जिसका होना अनिवार्य है !"

"मैं तुम्हारी बातों का मतलब नहीं समझ रहा हूँ—सविता

विक्रम बाबू ने कहा—"क्या तुम्हारा मतलब यह तो नहीं कि तुम आज कल की अनेक लड़कियों की भाँति आजन्म कुमारी रहने का व्रत लोगी!

सविता चुप रही! स्त्री हृदय हो तो ठहरा!! पिता के मुख से ऐसी बात!! भारत वर्ष की सभ्यता में पली हुई लड़कियाँ नहीं सुन सकतीं। विक्रम बाबू ने, सविता के ऊपर अपना रंग जमते हुये देखकर फिर कहना शुरू किया—बेटी सविता, यह संसार है संसार में मनुष्य को पग-पग पर भयानक परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है! ये परिस्थितियाँ उसी समय जीवन का अपना विषैला प्रभाव नहीं डालतीं, जब जीवन सुखी और शक्ति शाली होता है! मनुष्य विवाह क्यों करता है? केवल इसीलिये कि उसका जीवन सुखी और शक्ति शाली बन सके—वह एक से दो होकर संसार की परिस्थितियों से मोर्चा ले सके!!

विक्रम बाबू चुप होकर सविता के मुख की ओर देखने लगे। सविता ने, अपने हृदय के संघर्ष को रोक कर कहा—पिता जी, इसका उत्तर मैं आपको कल पत्र द्वारा दूँगी!" पत्र से उत्तर देने की बात सुन कर विक्रम बाबू का हृदय आश्चर्य से चौंक पड़ा। पर चारा क्या था? उन्होंने बात वहीं ख़तम कर दी। कर दी क्या, अपने आप बात का सिलसिला ही टूट गया। सविता, सोने के लिये नीचे आँगन में चली गई। विक्रम बाबू भी निद्रा

के लिये बेकली सी अपनी घड़ियाँ काटने लगे। वे कब सो गये, इसका उन्हें पता तक नहीं था !! पर सवेरे जब विक्रम बाबू की आँख खुली तो सबसे पहिले उनकी दृष्टि एक लिफाफे पर पड़ी। विक्रम बाबू ने उसे बड़ी उत्सुकता से हाथ में उठा लिया। लिफ़ाफा सविता का है! सविता उस समय भी आँगन में बोल रही थी। विक्रम बाबू लिफाफा फाड़ कर पत्र पढ़ने लगे। उसमें लिखा था:—पिता जी! मैं स्त्री हूँ इस युग की एक नवीन लड़की हूँ! अपनी आँखों से, उस समाज की, जिसका आपको बहुत भय है, अनेकों कुत्सित लीलायें देख चुकी हूँ! और प्रतिदिन देखती हूँ। समाज विवाह के सम्बन्ध में लड़के-लड़कियों पर स्वेच्छा-पूर्ण अत्याचार करता है, उसी के एक भयानक परिणाम से आज राष्ट्र का कोना-कोना काला पड़ गया है !! चारों ओर से असन्तोष और विद्रोह की ऐसी भयानक लपटें निकलती हुई दिखाई दे रही हैं जिन्हें देखकर अपने आप हृदय में सर्वनाश की भयंकर कल्पना पैदा होजाती है! किसी स्त्री को देखती हूँ वह अपने पति से असन्तुष्ट होकर उस पर विष का प्रयोग कर रही है! किसी 'पति' को देखती हूँ, वह अपनी स्त्री को कुपथ गामिनी समझ कर उसके गले पर गड़ाँसे या छुरी का प्रहार करते हैं। किसी का घर कलह की भयानक अग्नि से जलता हुआ दिखाई दे रहा है तो कोई कलह से ऊब कर; अपने

गले में फन्दा बाँधता हुआ दिखाई देता है ! ओह ! ऐसी अनेकों घटनायें समाचार-पत्रों के द्वारा आँखों के सामने आकर हृदय पर वेदना का गहरा भाव डाल जाती हैं। फिर क्या यही विवाह है ? यही विवाह का सुख और सन्तोष है ! यदि हाँ तब तो मैं कहूँगी कि विवाह जीवन के लिये एक ज़हर है, जो धीरे-धीरे इसका सर्वनाश कर देता है !

पर नहीं, मैं यह मानने को तैयार नहीं। विवाह सचमुच जीवन के विकाश का मार्ग है। संसार को शक्ति दान देने का उत्कृष्ट साधन है। पर समाज ने उसके महान उद्देश्यों में स्वार्थ का एक ज़हर मिला दिया है। सहस्रों लड़के और लड़कियाँ अपनी अनभिज्ञता के कारण बड़ी प्रसन्नता से जहर का घूँट पीकर अपने जीवन के विकाश से हाथ धो बैठती हैं। पर मैं भी उन्हीं की भाँति, ज़हर का कड़ुवा घूँट अपनी इच्छा से पीने के लिये तैयार नहीं। वैसे उन्हीं की भाँति मुझे भी ज़बर्दस्ती पिला दिया जाय तो दूसरी बात !! इसका यह तात्पर्य नहीं कि मैं विवाह ही नहीं करना चाहती। पर नहीं मैं चाहती अवश्य हूँ, पर चाहती हूँ अपनी स्वतन्त्रता !! मेरे जीवन की सारी स्वतन्त्रता मुझसे छीन ली जाय, विवाह के सम्बन्ध की मेरी अपनी स्वतन्त्रता से मुझे न वञ्चित किया जाय !! जिसके साथ मुझे रहना है, जिसकी जीवन-ग्रन्थि में मुझे बन्धना है,

उसका निर्वाचन मुझे स्वयं करने दिया जाय। मैं यहाँ दिल खोल कर कहती हूँ! सम्भव हो मेरा यह दिल खोल कर कहना, मुझे 'लज्जाशील' के अधिकार से वंचित कर दे। पर वंचित करने वाले इस रहस्य को क्या जाने? उनकी नज़रों में तो 'अपराधों' को छोड़ कर कुछ दिखाई ही नहीं देता—वे तो 'पुण्य' को भी पाप की परिभाषा के नीचे सिमेटा करते हैं! वे शक्तिशाली हैं—समाज के अन्धे विधाता हैं!!

आप मेरे लिये चिन्ता न करें पिता जी। मैं आपको चिन्तित भी करना नहीं चाहती! वैसे तो आप जो कुछ कहेंगे मुझे विवश होकर मानना ही पड़ेगा। पर मनुष्यता के नाते, मेरा भी कुछ कहने का अधिकार है। इसीलिये ये साहस करके कह रही हूँ आशा है, आप मेरी इस धृष्टता को क्षमा करेंगे—मैंने अपने विवाह के सम्बन्ध में········चुन लिया है। यदि आप उन्हें भूले न होंगे तो आपको केवल इतना ही बताना काफी होगा कि उनका नाम 'सुशील' है। वे यहीं अपनी माँ के साथ रहते हैं और बी० ए० में पढ़ते हैं। बस, इससे और कुछ अधिक कहने का मुझमें साहस नहीं है—आशा है आप मेरी इन बातों पर अवश्य विचार करेंगे।

—आपकी आज्ञा कारिणी पुत्री
"सविता"

सुशील ! वही सुशील जिसकी माँ कभी मेरे यहाँ आठ रुपये पर नौकर थी, जो मेरे टुकड़ों का मुहताज था ! जो चीथड़ों में रहा, खँडहरों में पला, उसी के साथ सविता विवाह करेगी और फिर वह अपनी जाति बिरादरी का भी तो नहीं है ! वह दरिद्र कंगाल ब्राह्मण का लड़का और मैं राजपूत, ज़मींदार !! छोटे राजा की मेरी पदवी !! लोग सुन कर क्या कहेंगे ? क्या मुख में कालिख नहीं लग जायगी ? पुराने लोग इसी लिये तो लड़कियों को पढ़ाना लिखाना पाप समझते हैं ! कल की लड़की और मुझसे ऐसी बातें !! यह सब इसी शिक्षा ही का तो प्रभाव है !! पर मैं तो अपने जीते जी यह नहीं होने दूँगा—विक्रम बाबू सोचते-सोचते क्रोध से काँप उठे। उन्होंने सविता को बुलाकर, उसके सामने ही पत्र के टुकड़े-टुकड़े कर फेंक दिये। और क्रोध के स्वर में कहने लगे—सविता ! तुम्हें मैंने शिक्षा दिला कर पाप किया, मैं समझता था, शिक्षा मनुष्य के हृदय मेंप्रकाश उत्पन्न करती है, पर आज तुमने मेरी उस भावना को बिल्कुल प्रतिबल बना दिया। अब तो मैं यह कहूँगा कि कभी-कभी शिक्षा भी मनुष्य को ऐसे अन्धकार-मय वातावरणमें पहुँचा देती है जहाँ से फिर उसके जीवन का उद्धार नहीं होता। इसी शिक्षा ने तो तुम्हारे हृदय और आँखों में वह ज़हर घोल दिया है जिससे तुम अपने को बिल्कुल भूल सी गई हो ! भला कहाँ वह दरिद्र ब्राह्मण का लड़का

और कहाँ तुम ज़मींदार की लड़की! इस अनोखे सम्बन्ध की चर्चा चलाते हुये तुम्हारी जीभ कट कर गिर नहीं जाती!!

"मगर—सविता ने धीरे से ओंठ खोल कर जवाब दिया—चीथड़ों में भी लाल छिपे रहते हैं—धूल में भी कभी कभी हीरे मिल जाते हैं पिता जी!!

चुप रहो—विक्रम बाबू ने कर्कश स्वर में कहा—"आज अभी तुम्हें यहाँ से चलना होगा! अपनी पढ़ाई का आज ही से अब तुम खातमा समझो!!

विक्रम बाबू ने सबका हिसाब किताब साफ़ कर तुरन्त वहाँ से चलने की तैयारी करदी! एक क्षण पहिले जिस घर के कमरे सजे हुए चमक रहे थे, वही अब सुनसान मालूम होने लगे! इस आकस्मिक परिवर्तन का रहस्य, किसी की समझ में कुछ भी न आया!

सविता विक्रम बाबू के साथ तारापुर चली आई। पर यदि उसका हृदय वहीं छुट गया हो तो आश्चर्य क्या?

—पाँच—

जीवन क्या वस्तु है ? आनन्द कुमार जानते ही नहीं ? उनकी धारणा है, संसार विलास का घर है—भगवान् ने सारी विलास-वस्तुयें इसी लिए बनाई हैं कि मनुष्य और किसी की चिन्ता न करके उन्हीं के साथ क्रीड़ा करते रहें—उन्हीं में अपने जीवन को लगा कर 'दो दिन' की दुनिया का सुख भोगता रहे ! इसीलिये प्रति वर्ष अपना सहस्रों रुपया विलास-वस्तुओं के क्रय करने में ख़र्च कर देते हैं। ज़मींदारी है—वही

स्वत्वाधिकारी, रुपये-पैसे की कमी क्या ? मदिरा-मोहिनी भी आती हैं, वेश्यायें गान भी करती हैं ! चापलूसों की तो बाज़ार लगी रहती है ! उन्हें भी क्षण-क्षण पर चिलम दागने को मितली है ! फिर ज़रा सी चापलूसी कर देने में क्या हर्ज़ ? कहते हैं, स्वर्ग ! स्वर्ग !! खासी इन्द्रपुरी !!

धन की कैसी करामात है ? अवगुण छिप जाते हैं, गुण मिट्टी के ढेले बनकर मार्ग पर छिटक जाते हैं ! मिट्टी के ढेले ही सही ! पर है तो अमीर के ! लोग अन्धे बनकर उनका आदर करते हैं—उन्हें आदर से मस्तिक पर चढ़ाते हैं ! संसार है ! ग़रीबों के पग-पग पर काँटे हैं ! उनके गुणों का भी तो विकाश नहीं होता ! कुछ बुराई की नहीं कि हवा में मिली हुई दुर्गन्ध की तरह चारों ओर फैल गई ! आफ़त है ! ग़रीबी, सचमुच, संसार के लिये अभिशाप है !! देखो, इसलिये न, आनन्द कुमार में अनेकों अवगुणों के होते भी उनका नाम है। लोग उनका आदर करते हैं—उन्हें आदर से मस्तक झुकाते हैं और उन्हीं के गाँव का बुद्धू चमार, ईश्वर का भक्त होने पर भी लोगों में निन्दनीय समझा जाता है ! दुनियाँ की आँखें तो हैं, खरे-खोटे की पहचान करना क्या जाने ?

जिस दिन आनन्द-कुमार का रसीला नाम, उनकी मज़ेदार स्थिति, उनका लोगों पर प्रभुत्व और उनकी गगन-चुम्बी अट्टा-

लिका का पता विक्रम बाबू को लगा, उस दिन वे ऐसे प्रसन्न हुये, मानो उन्हें किसी ने स्वर्ग का एक टुकड़ा धरा दिया हो। वे प्रमदा से कहने लगे—ऐसा जान पड़ता है, मानो सविता के भाग्य के दिन बड़े अच्छे हैं। यदि आनन्द कुमार से सविता का विवाह होगया तो यह अवश्य कहना पड़ेगा कि भगवान् ने उसे अबोध जानकर उसके पापों को भुला दिया है। कोई दूर के भी नहीं हैं— यहीं अपने गाँव से सात-आठ कोस की दूरी पर, मिदना बाज़ार में, उनका घर है! हज़ारों बीघे के ज़मींदार हैं!!"

प्रमदा के ओठों पर एक मुसकुराहट आ गई। मानो उसे कोई अमूल्य निधि मिल गई हो और बड़े प्यार, बड़ी उत्सुकता से उसे लेने के लिये धीरे से हाथ बढ़ा रही हो। उसने उत्तर दिया—मगर इस तरह बातों से ही काम तो चलेगा नहीं!! ऐसा घर-द्वार, ऐसा नामधारी वर! हज़ारों लोग उनके द्वार पर आते-जाते होंगे! फिर प्रयत्न क्यों नहीं करते? देर होने से कहीं काम न बिगड़ जाय!!"

"ख़ूब—विक्रम बाबू ने अधिक बुद्धिमान होने का दावा पेश करते हुए कहा—तुम मुझे समझती हो क्या? क्या मैं चुप चाप बैठा हूँ? दौड़ना तो मुझे ही पड़ेगा, आफ़त तो मुझको ही उठानी पड़ेगी! तुम तो घर में बैठी रहोगी! फिर मैं देर क्यों

करने लगा ? ऐसा घर-द्वार और देर !! भला यह कैसे ? आज सवेरे ही मैंने पण्डित रामधर को वहाँ भेज दिया है। वे अब आते ही होंगे, देखें क्या ख़बर लाते हैं ?"

"कौन रामधर !! वही मूर्ख, जो संस्कृत का एक श्लोक भी ठीक-ठीक नहीं कह सकता, जो ईश्वर की कथा सुनाने के बहाने भोले-भाले ग्रामीणों से पैर पुजवाता फिरता है, जिसने उस दिन अपनी छोटी दुध-मुँही बच्ची को हज़ार रुपये में बेचकर पाप का पहाड़ मोल लिया, वही मेरा विवाह ठीक करने गया है। वही मेरे लिये घर-द्वार देखने गया है !! हाय रे समाज का कुविचार !! हाय री समाज की कलुषित प्रथा !! तेरा कब सत्य-नाश होगा ? तू नव अस्तित्व-हीन होकर शून्य में विलीन हो जायगी ? तूने ही तो समाज के स्त्री-पुरुषों के पैरों में लोहे की वह जंजीर पहना रक्खी है, जिसकी झनझनाहट को सुनकर आकाश तक काँप उठता है !! ओह मैं तुम्हें क्या कहूँ पिताजी। तुम नवीन युग के होते हुए भी नवीन भावों के पुजारी न बने। यदि तुम्हें मेरी इच्छा के विरुद्ध मेरा विवाह ही करना था, तो मेरे जीवन का निर्णय करने के लिये तुमने क्यों नहीं कष्ट उठाया। कुछ भी हो तुम पिता हो। तुम्हारे हृदय में, मेरे प्रति एक करुणा है, एक पीड़ा है ! तुम अपनी अज्ञानता से, चाहे मुझे फाँसी के तख्ते पर चढ़ा दो, पर मुझे फाँसी के तख्ते पर लटकते हुये

देख कर तुम्हारी आँखें अवश्य रो देंगी—तुम अवश्य आगे बढ़कर मेरे गले का फन्दा छोड़ दोगे ! पर वह मूर्ख, ममता-हीन ब्राह्मण ! इससे उससे क्या तात्पर्य ! मेरे गले पर चाहे छुरी चले चाहे तलवार ! मेरा, भावी जीवन, चाहे अन्धकार-पूर्ण हो चाहे विपत्तियों का भण्डार ! वह रुपयों का लोभी ब्राह्मण तो अपना एक कर्त्तव्य बजा लायेगा ! पर क्या मेरा 'सुशील' छूट जायगा ? क्या हम दोनों का प्रणय-सूत्र टूटकर खण्ड-खण्ड हो जायगा ? विक्रम बाबू की बातों को छिप कर सुनती हुई सविता सोचते सोचते आकुल सी हो उठी ! उसका सारा शरीर पसीने से तर होगया ! यदि द्वार पर से कोई विक्रम-बाबू को आवाज़ न लगाता और विक्रम बाबू उस राह से घर से बाहर न जाते तो इसमें सन्देह नहीं कि वियोग की गहरी वेदना, सविता को थोड़ी देर के लिए मूर्च्छना की गोदी में सुला देती। और उस घर में हलचल सी मच जाती !!

विक्रम बाबू को देखकर सविता सावधान होगई। पर उन्हें यह जानने में देर न लगी कि सविता ने छिपकर मेरी सब बातें सुन ली हैं ! पर इससे क्या तात्पर्य ? बातें तो उसी की थीं ! सुन लिया तो बुरा क्या ? विक्रम बाबू द्वार पर चले गये ! देखा, रामधर ! खुशी से नाच उठे। कहने लगे—क्या ख़बर लाये पण्डित जी ! सब अच्छा तो है !!"

चतुर ब्राह्मण ! अवसर को खाली जाने दे । यही तो लेने देने का मौक़ा है । झट से बोल उठा—पण्डित रामधर के जीवन में निराशा । यह आश्चर्य है बाबू साहब ! भगवान् की कुछ ऐसी दया-सी है कि जहाँ जाता हूँ, काम तुरन्त बन ही जाता है । सब ठीक होगया है, घर द्वार अच्छा है । विवाह कर दीजिये । भगवान् सब मंगल करेंगे ।"

विक्रम बाबू के हर्ष की सीमा नहीं थी । उन्होंने रामधर को दक्षिणा देकर प्रमदा को भी समाचार सुनाया । वह भी हर्ष से नाच उठी । और फिर विवाह का एक ऐसा अभिनय रचा गया जिसमें सविता को, इच्छा न रहने पर भी सम्मिलित होना पड़ा । समाज का प्रतिबन्ध तो है । उसे पुरुष तोड़ सकते हैं, स्त्रियाँ नहीं । उनके जीवन के लिये यह एक भयङ्कर अभिशाप है ।

—छः—

"बरसात का दिन था ! छोटी-छोटी फुहियाँ पड़ रही थीं ! उधर आकाश से बादल झर रहे थे और इधर मेरी आँखें तीन चार दिन की भूखी प्यासी ! एक अन्न भी उदर में नहीं पहुँच सका था ! यदि मैं अकेली होती तो कहीं लुढ़क जाती—जीवन का अन्त कर डालती ! पर साथ के तुम मेरे जीवन की आशा ! तुम्हारा शरीर बुखार की ज्वाला से तप्त ! एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकते थे ! एक छायादार बरगद के वृक्ष के नीचे तुम्हें

सुलाकर बैठ गई। सोचने लगी, मेरे जीवन के प्रलय का दिन आज ही है ! पर ईश्वर भी कितने दयालु हैं, कितने करुणा शील हैं ! एक सन्यासी बाबा दूसरी ओर से पहुँच ही तो गए ! मेरी दयनीय अवस्था ! उनकी स्नेह कातर आँखों में आँसू आ गये ! कहने लगे—बुढ़िया ! सब्र कर ! ईश्वर की दया हुई तो तुम्हारा लड़का अच्छा हो जायगा ! मैं चुप रही फिर वे करुणा करके मुझे काशी ले आये और अपने इस टूटे-फूटे आश्रम में स्थान दिया। उन्होंने तुम्हारी शिक्षा में बड़ा कष्ट उठाया है सुशील !! माँग-माँग कर पैसे ले आते थे और तुम्हारी पढ़ाई में खर्च करते थे ! वे इस समय संसार में नहीं हैं ! पर उनकी बातें आज भी मेरे हृदय में ज्यों की त्यों बनी हुई हैं। कहते थे—बुढ़िया ! तेरा घर आबाद करके तब मैं मरूँगा ! पर हाय मर गये उनकी इच्छा पूरी न हो सकी ! तो क्या बेटा तुम अपने उस दयालु रक्षक की स्वर्गीय आत्मा को सन्तुष्ट न करोगे ! सोचो, कितना पाप होगा, उसकी इच्छा के विरुद्ध काम करना—बुढ़िया ने इन पिछली बातों की एक साथ ही चर्चा करके सुशील से कहा !!

सुशील के हृदय में भयङ्कर आघात सा लगा ! अतीत जीवन की करुणामयी कहानी उसके हृदय में थिरक उठी ! सन्यासी बाबा की करुणा शीलता का लुभावना चित्र उसकी आँखों के सामने दौड़ गया ! वह आँखों की कृतज्ञता का दो

बूँद आँसू भर कर कुछ कहना ही चाहता था कि प्रेम का एक झोंका आया और उसे उड़ा ले गया! सविता, अपनी रूप राशि के साथ उसके सामने नाच उठी! उसने कहा—न माँ मैं विवाह न करूँगा!

बुढ़िया काँप उठी! उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। उसकी आशाओं का दुर्ग ढहता हुआ नज़र आने लगा। उसने सोचा था, सुशील का विवाह करूँगी—घर में बहू लाऊँगी। जीवन के शेष दिन सुख से कटेंगे, पर सुशील तो विवाह ही न करेगा! आखिर बात क्या है? संसार में सभी तो विवाह करते हैं, फिर क्यों नहीं करेगा? क्या उसका मन सविता के साथ! दोनों घण्टों साथ-साथ घूमते थे—रात-रात सैर करते थे। पर नहीं मेरा सुशील!! सच्चा है। उसके चरित्र पर कलंक लगाना पाप होगा, अन्याय होगा! पर वह विवाह क्यों नहीं करता? मनुष्य जिस सुख के लिये तरसते हैं, उसी को वह पैरों मे ठुकरा रहा है! सन्यासी तो है नहीं!! बुढ़िया सोचते-सोचते दुबली हो उठी! रात दिन चिन्ता मे ही उसके जीवन को सामना करना पड़ता। वह हर घड़ी सुशील के विवाह की ही बात सोचा करती थी!!

पर सुशील!! क्या करे!! प्रेम एक जादू है न, वियोग की आग है न। जब आँखों में समा जाता है तो मनुष्य

बावला बन जाता है। जीवन के सारे अस्तित्त्वों को छोड़ कर उसी का राग अलापने लगता है। पाप, पुण्य, अपराध और आज्ञा-पालन कुछ नहीं केवल एक प्रेम। प्रेम की आशा में जीता, उसकी निराशा में मृत्यु !! वियोगी के जीवन का यही तो धर्म है। यदि सुशील की माँ सुशील से क्षुब्ध है—दु:खी है तो उसका क्या अपराध !! उसकी आत्मा, उसका हृदय नहीं चाहता किसी दूसरे के साथ विवाह करना ! दिल ही तो है। उसने उसकी ही सम्मति से अपना सब कुछ 'सविता' के ऊपर लुटा दिया है। उसको विश्वास है, सविता विवाह करेगी तो उसी के साथ !! उसने उसे प्रेम दान दिया है—अपने हृदय के तार में कस कर बाँध लिया है। नदी की छाती पर वह नाँव, उस नाँव पर सविता और सुशील !! वह चाँदनी रात और नीले गगन पर चमकता हुआ चन्द्रमा। सविता की वह प्रेम-प्रतिज्ञा सुशील कैसे भूल सकता है? नहीं, नहीं वह विवाह न करेगा !! सविता ही उसके हृदय मन्दिर की एक मात्र अधिपति देवी है। उसमें दूसरी कोई कैसे स्थान पा सकती है?

गंगा के निर्जन कूल की बालुका-मयी धरती। चाँदनी बरस रही है। गंगा का निर्मल जल कल-कल कर रहा है। उसी धरती पर अनेकों बार सुशील बैठ कर मादकता से

गंगा के निर्मल जल पर खेलती हुई चाँदनी की ओर निहार चुका है। पर आज उसकी आँखें सूनी हैं—हृदय चिन्ता की लहरियों में उलझा हुआ है। वह कभी शिर उठा कर सूनी प्रकृति की ओर देखने लगता है और कभी शिर नीचा कर गम्भीरता पूर्वक कुछ सोचने लगता है। ऐसा जान पड़ता है, मानों वह उतावला हो कर कभी प्रकृति से और कभी बालू के छोटे-छोटे कणों से कुछ सवाल जवाब करना चाहता हो। पर मूक और अस्तित्त्व हीन ! उससे जवाब कैसा ? कोई जवाब दे या न दे। पर उसके हृदय के कोने-कोने से आवाज़ निकलती है—सविता ! हा, सविता कहाँ गई ! उसने मुझे भुला दिया ? अभी तो उस चाँदनी रात में वह प्रतिज्ञा करके लौटी, फिर क्या हो गया ? दूसरे ही दिन वह मकान खाली छोड़ कर चली कहाँ गई ? क्या तारापुर ? हो सकता है, उसके पिता आये हों और वे उसे साथ में ले गये हों। पर उसे मुझे खबर देनी चाहिये थी। सम्भव हो उसे अवसर न मिला हो। पर क्या अब तक अवसर नहीं मिला ? सुशील सोचते-सोचते चिन्तित सा हो उठा। उस मूक रजनी में कभी-कभी वह कुछ कह भी उठता था। पर वहाँ उसकी बातों का जवाब देने वाला कौन था ? कोई हो या न हो प्रेम का उन्माद है न !!

सुशील के मस्तिष्क में तर्क-वितर्क की आँधियाँ चल रही हैं। वह कभी अपनी माँ की बात सोचता है और कभी सविता की। कुछ भी सोचता है, पर सविता उसे याद हीं आजाती है। वह अपने विचारों में बिल्कुल तन्मय सा है। उसे ख्याल भी नहीं कि कहाँ क्या हो रहा है—इस सूनी प्रकृति में कौन किस ओर से आ रहा है। उसे किसी के आने का सन्देह भी नहीं है। रात अधिक बीत चली है। कौन इस पार आवे। वह सविता की उपासना में अपने को लुटा कर चेतना-शून्य हो गया है। नाँव से धीरे से उतर कर नवयुवक ने सुशील की आँखें बन्द कर लीं !!

'आँख मिचौनी।'—कौन खेल रहा है भाई—सुशील कह कर चौंक उठा। क्या…………? ओह! भूल हो गई! भाई शारदा तुम हो क्या ?

"हाँ शारदा ही—उस ओर से उत्तर मिला—पर तुम यहाँ बैठे क्या कर रहे हो सुशील? अब तक घर नहीं गये, तुम्हारी माता जी बैठी-बैठी रो रही हैं। क्या उनकी हालत पर तुम्हें करुणा नहीं आती। उन्होंने हमें तुम्हारी खोज करने के लिये भेजा है। जब तुम नाँव पर इस ओर आ रहे थे तो मैंने तुम्हें देख लिया था। इसलिये तुम्हारा पता लगाने में मुझे कठिनाई न हुई। पर तुम्हारी आँखों पर से हाथ तो मैं

अपना उसी समय हटाऊँगा, जब तुम यह प्रतिज्ञा कर लोगे कि आज से फिर ऐसा कभी न करूँगा।"

सुशील चिन्ता में पड़ गया। उसने शारदा का हाथ आँखों पर से हटाने का प्रयत्न किया, पर वह सावधान! पहले ही से सोच कर चला था। हाथ न हटा। सुशील ने परेशान हो कर कह दिया। हार मानता हूँ भाई! ऐसा कभी न करूँगा हाथ तो उठा लो!

सुशील ने मुख से तो हार मान ली, पर उसके हृदय ने हार मानी या न मानी, इसमें कुछ सन्देह है!!

—सात—

उस सुसज्जित भवन के कोने में वह एक कमरा था। जिसमें प्रकाश का अकाल सा पड़ा रहता था। वायु भी न आती थी और न जाती थी। फिर उस कमरे की टूटी चारपाई पर पड़ी हुई रोगिणी की हालत। वह पीली पड़ गई थी—आँखें नीचे धँस गई थीं। शरीर सूख कर काँटा हो चला था। डाक्टर कुमार बाबू ने उसकी परीक्षा करके कहा—बाबू साहब! रोगिणी के शरीर में जितने रोग नहीं हैं, उससे कहीं अधिक

टूटा-फूटा प्रकाश और वायु हीन कमरा उसके स्वास्थ्य के लिये विषैला सिद्ध होरहा है? क्या इतने लम्बे चौड़े मकान में इसके रहने का अन्यत्र प्रबन्ध नहीं किया जा सकता ?

आनन्द कुमार ने मुख पर उदासीनता और अपेक्षा का भाव लाकर उत्तर दिया "क्या करूँ डाक्टर बाबू, विवशता है !! सदियों की प्राचीन कुल-प्रथा को कैसे विनष्ट कर सकता हूँ। यह तो आप जानते ही हैं कि इन्हें लड़का पैदा हुआ था। प्रसूती स्त्रियों के लिए हमारे यहाँ यही कमरा रक्खा गया है!"

"पर—यह प्रथा किस काम की, जिससे जीवन का विनाश होता है—डाक्टर कुमार ने दुःखी स्वर में कहा—देखते नहीं आप रोगिणी की कैसी चिन्ता-जनक अवस्था है। एक तो उसका सद्य जात बच्चा मर गया है और दूसरे प्रसूत-ज्वर का प्रकोप !! यदि उसकी परिचर्या ठीक से न की गई तो फिर उसके प्राण-पखेरू उड़ जायँगे और पीछे पछताना ही हाथ आयेगा !!

"क्या किया जाय, डाक्टर बाबू !! ईश्वर की इच्छा, जो होना होगा, वह तो होकर के ही रहेगा। पर सैकड़ों वर्ष की प्राचीन कुल-प्रथा को हम कैसे तोड़ सकते हैं ? आनन्द कुमार ने उत्तर दिया।

"जैसी आपकी मर्जी! डाक्टर कुमार ने कहा—किसी आदमी को मेरे साथ भेजिये। मैं दवा दे दूँगा!!

आदमी! एक नहीं दो चार! डाक्टर कुमार का घर तो बनारस है? किसी दूसरी जगह जाना होता तब तो दूसरी बात थी! पर बनारस, वे किसी दूसरे आदमी को न भेजेंगे! स्वयं जाकर दवा ले आयेंगे! पर यह नई बात, उस रोगिणी के लिये इतना कष्ट—उसके लिए इतनी करुणा-पूर्ण ममता!! नहीं, वहाँ उनकी जीवन सहचरियाँ हैं!! वे उनके साथ आमोद-प्रमोद करेंगे—सुख की घड़ियाँ बितायेंगे! आनन्द कुमार ने डाक्टर कुमार से कहा—मैं आपके साथ-साथ बनारस चला चलता हूँ!!

इससे अच्छी और क्या बात होती! डाक्टर कुमार और आनन्द बाबू, दोनों गाड़ी पर सवार होकर बनारस की ओर चल दिये! थोड़ी दूर की यात्रा, शीघ्र समाप्त हो गई। डाक्टर कुमार ने अपने आफिस में पहुँच कर दवा का नुस्खा लिखते हुए कहा—रोगिणी का नाम?

'सविता'—आनन्द कुमार ने संकोच में उत्तर दिया!

'सविता'—डाक्टर ने चौंक कर कहा—क्या आपका विवाह तारापुर में विक्रम बाबू की लड़की के साथ हुआ है? वे तो हमारे मित्रों में से हैं! मैं उन्हें बहुत दिनों से जानता हूँ!!

आनन्द कुमार ने सिर हिला कर! हाँ, एक छोटा सा

उत्तर दे डाला ! आनन्द कुमार दवा लेकर चले गये ! पर डाक्टर कुमार के हृदय में विचार का हस्य युद्ध सा होने लगा ! क्या यही सविता है ? क्या इसी के प्रेम-तार में फँस कर सुशील अपनी जीवन सम्पत्ति को बड़ी बे-रहमी से कुचल रहा है ? क्या इसी की प्रेम मयी ममता ने उसकी आँखों में जादू का वह रंग छिड़क दिया है, जिसमे वह सारे विश्व को भूल सा गया है ! मैंने भी तो उसे कभी सुशील के घर देखा था ! पर उस समय तो वह रूप की राशि थी, सौन्दर्य की जीती-जागती ज्योति थी ! किन्तु इस समय तो वह पहचानी तक नहीं जाती ! उसे देख कर कौन कह सकता है कि यह वही 'सविता' है जिसके प्रेमोन्माद ने सुशील को उन्मत्त बना दिया, किन्तु सुशील भी, कितनी अज्ञानता से जीवन-मार्ग पर आगे क़दम बढ़ा रहा है !! उसके उस विश्वास की, 'सविता' मेरे ही साथ विवाह करेगी; क्या सविता रक्षा कर सकी ? क्या उसने उसे अपने-प्रेम-तार में बाँध कर ज़हर का कड़ुवा घूंट नहीं पिलाया ! कौन जाने, वह विवसी मृग की भाँति, विवाह के इस नये सूत्र में बाँधी गई हो ? उसके हृदय की क्या अवस्था है, यह तो वही जान सकती है ! हो सकता है, उसकी वियोग-वेदना ने ही उसे दुःख के इस निराशा जनक मरुस्थल में पहुँचाया हो ? कौन जाने ? क्या रहस्य है ! पर अब सुशील को विवाह तो कर लेना ही चाहिये !! वह जिसे

आशा की सुनहली रेखा पर दृष्टि गड़ा कर इतने दिनों से देख रहा था, वह तो अब मिट गई !! फिर बूढ़ी माता की आशाओं पर तुसार डालने से लाभ क्या ? डाक्टर कुमार; विचारों के इस गहरे उद्वेग से चिन्तित हो उठे !!

'डाक्टर कुमार" !! उन्हें लोग इसी नाम से पुकारते हैं ! चारों ओर उनका नाम है। जिस दिन सुशील, बनारस में सन्यासी बाबा के साथ, दयनीय अवस्था से आया, उसी दिन से उस पर डाक्टर कुमार की स्नेह मयी ममता है ! वे उसकी ओजस्विनी प्रतिभा, उसकी सेवा वृत्ति की कभी-कभी बड़ी प्रशंसा तक किया करते हैं ! उनका लड़का, शारदा तो, सुशील को अपने प्राणों के समान समझता है ! डाक्टर कुमार को, सुशील और सविता के प्रेम की कहानी शारदा के द्वारा ही ज्ञात हुई ! शारदा, सुशील के रेशे-रेशे से परिचित है। उससे, उसकी कोई बात छिपी नहीं है। सुशील ने कई बार रोकर उसे अपने जीवन की कहानी सुना डाली है। उसके हृदय में सविता के लिये कितनी करुणा है, कितनी ममता है शारदा यह सोच कर कभी स्वयं भी अपने आँखों को गीली कर लेता है। उसे सन्देह है, सुशील सविता के अभाव में अपने जीवन पर अत्याचार न कर बैठे! इसी लिये वह सावधान भी रहता है—उसकी गति विधि को परखा करता है ?"

सायंकाल का समय ! डाक्टर कुमार ने शारदा को बुलाकर कहा—"शारदा ! सुशील कहाँ है ? उसकी आजकल क्या अवस्था है ? उसके हृदय का वियोग क्या अभी कुछ कम नहीं हुआ ? क्या अब भी वह पागलों की भाँति, गंगा के निर्जन कूल पर घण्टों बैठा करता है ?

"जी हाँ—शारदा ने धीरे से उत्तर दिया—उसके हृदय में सदैव सविता के प्रेम की आग जला करती है ! वह कभी कभी कहता है, मैं संसार से ऊब गया। मेरी आँखों के सामने, संसार जिस रूप में नाच रहा है, वह एक काँटों से भरा हुआ जंगल है !! उसकी बातों को सुनकर बड़ा दर्द होता है—हृदय में बड़ी पीड़ा होती है ! यदि कुछ दिनों तक उसकी यही दशा रही तो इसमें सन्देह नहीं कि उसका मस्तिष्क विकृत हो जायगा ! और फिर वह किसी काम का न रह जायगा !"

'हूँ ! यह बात है ! डाक्टर कुमार ने आश्चर्य के स्वर में कहा—अच्छा किसी नौकर के द्वारा उसे अभी मेरे पास बुलवाओ ! मैं उसे समझाने का एक बार प्रयास करूँगा !"

नौकर !! कौन बुलाये !! शारदा स्वयं जल्दी-जल्दी सुशील के घर चला गया और थोड़ी देर बाद सुशील को साथ में लेकर अपने पिता के पास आ पहुँचा। डाक्टर बाबू को यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि, मित्रों के प्रति सच्ची सहानुभूति

प्रगट करने में, शारदा का हृदय बड़ा करुणा-शील है। सुशील, डाक्टर कुमार को आदर से प्रणाम करके, शारदा के साथ ही, एक बेञ्च पर एक ओर बैठ गया ?

डाक्टर कुमार ने सुशील के सूखे हुये मुँख पर करुणा की एक दृष्टि डालकर कहा—"सुशील ! मैं तुम से एक बात पूँछना चाहता हूँ, क्या तुम सच्चे हृदय से उत्तर दोगे ?"

"आपकी बातों का मैंने कभी झूठा भी उत्तर दिया है— सुशील ने उदास होकर कहा !!

"अच्छा तो तुम विवाह क्यों नहीं करते ! क्या आजन्म ब्रह्मचारी रहने का विचार है ?" डाक्टर कुमार ने कहा।

ब्रह्मचारी होना कोई बुरा तो नहीं है, डाक्टर बाबू— सुशील ने उत्तर दिया—पर उसके लिये तो सौभाग्य चाहिये ! हम अभागों को तो जीवन की काँटेदार झाड़ी में चलना ही पड़ेगा—विवाह करना ही पड़ेगा ! पर विवाह के सम्बन्ध में तो आप मेरे विचार कई बार सुन चुके हैं ! मेरी धारणा है, विवाह से जीवन तभी सुखी हो पाता है, जब पात्र और पात्री दोनों प्रत्येक की परिस्थिति में सन्तुष्ट रहते हैं !"

हाँ, यह बिल्कुल ठीक है, सुशील—डाक्टर कुमार ने कहा—पर तुम्हारे इस भोलेपन पर दया आती है। पता नहीं तुमने इस छलिया संसार को किन आँखों से देखा है ?

तुम्हारा यह अटूट विश्वास और प्रेम का गहरा उन्माद देख कर मेरे हृदय में एक वेदना सी होती है। तुम, जिस 'सविता' के वियोग और प्रेम में, अपने अस्तित्त्व को निर्दयता-पूर्वक लुटा रहे हो, क्या तुम्हारा विश्वास है कि वह अभी तक कुमारी है? ओह! तुम कितने भूले हुए हो!! प्रेम की यह आँधी, पता नहीं तुम्हें जीवन के किस मरुस्थल में ले जायगी!!

सुशील चौंक पड़ा! उसने डाक्टर कुमार की ओर आँखें उठा कर कहा—"क्या सचमुच सविता ने विवाह कर लिया डाक्टर बाबू!!" आपकी दृढ़ बातों से तो ऐसा प्रकट होता है, मानो आपने उसके सम्बन्ध में कोई विश्वासनीय समाचार सुना हो।

डाक्टर कुमार ने 'सविता' के रोग और उसके विवाह की बातें बताते हुए कहा—विश्वास-घाती संसार के स्वरूप को पहचानने के लिये दूसरी आँखें चाहिये सुशील!! जिस संसार की मोह-मयी भावनावों में पड़ कर लोग अपने को भूल जाते हैं, फिर दोनों से जुटे हुए जीवन के नाते टूट जाते हैं, उसमें यदि सविता ने तुम्हारे प्रेम के अच्छे धागों को तोड़ दिया हो तो आश्चर्य क्या?

सुशील की आँखों मे मोती के सदृश गोल-गोल दो बूँद आँसू गिर पड़े उसने बड़ी वेदना से, डाक्टर कुमार के अन्तिम

प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा—जीवन के अगाध सागर में बहते-बहते मैं दूर निकल गया था डाक्टर बाबू !! आपने मुझे पुनः भूल पर लाकर सचमुच बड़ी करुणा की !! अब मैं वही करूँगा जिसके लिए माँ चिन्तित है, जिसके लिये आप भी मुझे बराबर समझाते रहे हैं !!

डाक्टर कुमार ने सन्तोष और सुख की साँस ली। किन्तु कौन यह कह सकता है कि उन्हीं की भाँति, सुशील के हृदय में भी सुख और सन्तोष की फुहियाँ बरस रही हैं !!

—आठ—

निर्जन कक्ष में बन्दिनी अपराधिनी की भाँति पड़ी है। बाल बिखरे हैं। ओंठ सूख गए हैं! आँखें रोते-रोते सूज आई हैं! आँखों के निम्न भाग में, काली रेखाओं की बहार सी लग गई है! शरीर में भी स्थान-स्थान पर काले चिन्ह साफ़ नज़र आ रहे हैं! वह पड़ी है भूमि पर!! रोती भी नहीं! बहुत रो चुकी! ईश्वर ने भी तो नहीं सुनी! फिर रोकर क्या करेगी—करुणा की सिसकियाँ लेने से लाभ क्या? चाहती है,

दम तोड़ दे ! कई वार गले में फन्दा भी लगाया, पर प्राणों का मोह !! हाथ अपने आप गले पर से हट गए ! पर अत्याचार की इस भयंकर ज्वाला से तो मर जाना ही अच्छा ! फिर प्राणों का मोह कैसा ? नहीं वह आत्मघात करना पाप समझती है—उसे गीता के कई श्लोक अब भी याद हैं ! वह उन्हें ज़बान पर लाकर, डर जाती है काँप उठती है !!

रात बीत गई ! सबेरा होते ही आनन्द कुमार ने उस कमरे में प्रवेश किया ! वह उन्हें देख कर उठकर बैठ गई । आनन्द कुमार ने आँखों में कडुवा भाव भर कर कहा—सविता ! क्या अब भी तुम्हारा दिमाग़ ठिकाने न आया ? क्या अब भी तुम मेरे कामों का विरोध करने की शक्ति अपने हृदय में रखती हो ?

हाँ, सविता ने तीव्र स्वर में उत्तर दिया—और उस समय तक जब तक कि मेरे ये अभागे प्राण बेत के छड़ियों के मार से उड़ न जायँगे !! आप समझते हैं, सविता अत्याचार से डर जायगी और घर में मदिरा की सैकड़ों प्यालियाँ पाप के टुकड़ों पर जीवन बसर करने वाली वेश्याओं को देख कर आँखें बन्द कर लेगी, नहीं उससे ऐसा कभी न होगा ! और होगा कब जब उसकी दोनों आँखें पाप की तीखी बर्छियों से प्रकाश-हीन कर दी जायगी !

पर ! आनन्द कुमार ने गरज कर कहा—तुम्हें मेरे कामों का विरोध करने का कोई अधिकार नहीं है। यह सम्पत्ति मेरी है, मैं उसका मालिक हूँ ! लुटा दूँगा या रक्खूँगा, तुम होती हो कौन ? चाहे शराब की बोतलों में ख़र्च कर दूँ, चाहे वेश्याओं को दे दूँ, तुमसे मतलब ? मैं तुम्हें इसके लिये कई बार साव-धान कर चुका हूँ। और फिर कर रहा हूँ ! यदि तुम मेरे इन कामों का विरोध करोगी तो मैं तुम्हें एक क्षण में ही जहन्नुम में पहुँचा दूँगा !

जहन्नुम ! सविता ने आँखों में क्रोध का भाव भर कर उत्तर दिया—जहन्नुम मेरे लिये सुख कर होगा ! आप सचमुच मुझे एक क्षण में जहन्नुम में भेज दीजिये ! मैं तो जहन्नुम में जाने के लिये खुशी से तैयार हूँ ! पर जब तक इस घर की एक अंगुल भी भूमि पर रहूँगी, विरोध अवश्य करूँगी ! भूखी रहूँगी, अत्याचार की मार सहूँगी, पर पाप न होने दूँगी ! कहता है कौन, घर पर मेरा अधिकार नहीं है ! मैं तो इस घर की एक छोटी सी छोटी चीज को भी अपनी समझती हूँ ! मेरे इस अधिकार को संसार की कोई शक्ति नहीं छीन सकती ! यदि मैं पाशविक बल द्वारा अलग भी कर दी जाऊँगी तो भी इस भवन को अपना कहने में मुझे तनिक भी संकोच न होगा ! फिर इसमें वेश्यायें कैसे टिक सकती है ? इसे कैसे

बदमाशों और चोरों का अड्डा बनाया जा सकता है ? मैं या तो इस अड्डे का विनाश करूँगी या स्वयं दम तोड़ कर मर जाऊँगी !!

आनन्द कुमार क्रोध से पागल होगये। उनकी शराबी आँखें चेतना-शून्य होकर राक्षसी काण्ड का अभिनय करने के लिये तैयार सी होगई। यदि उनके जीवन की रगों में सुधा का रस घोलने वाली गुलनार पीछे से उनके कन्धे पर हाथ न धर देती तो सविता की गोरी शरीर पर काले रूप के सैकड़ो चकत्ते अवश्य प्रकट हो जाते !!

आनन्द कुमार ने पीछे फिर कर देखा—गुलनार ! वे हँस पड़े ! उनकी नस-नस में एक उन्माद दौड़ गया ! उन्होंने सविता के सामने ही गुलनार की कलाई पकड़ कर कहा—गुलनार ! प्यारी गुलनार !! देखो तो; इस बद-किस्मत का झूठा आग्रह। कहती है शराब की प्यालियाँ फोड़ दूँगी, वेश्याओं को घर से निकाल कर बाहर कर दूँगी ! भला यह भी कहीं हो सकता है !!

गुलनार ने सविता पर एक दृष्टि डाली। उसकी नस-नस में एक बिजली दौड़ गई। उसकी आँखों में करुणा का एक अगाध सागर लहरा उठा ! उसने आनन्द कुमार से अपनी कलाई छुड़ाते हुए कहा—आनन्द बाबू ! क्या आप मनुष्य से

कोई और दूसरी चीज़ तो नहीं हैं! उनकी यह दशा कैसी? क्या यह आपकी विवाहिता स्त्री हैं? क्या आपने सचमुच अपने हाथों से ही इनकी यह दुर्गति की है। सहस्रों आदमी रोज ही वेश्याओं के पास प्रेम की भीख माँगने जाते हैं, पर क्या वे इसी भाँति अपने घर की देवियों के ऊपर पाशविक अत्याचार किया करते हैं? आनन्द बाबू, जब तक आप इन्हें सुख नहीं पहुँचा लेते, तब तक मैं आप को प्यार नहीं कर सकती!!

सविता चौंक उठी! एक वेश्या में इतनी उदारता! एक पाप के टुकड़ों पर जीने वाली स्त्री के हृदय में इतनी करुणा। ओह! कौन जान सकता है, किसका हृदय कैसा है!! कौन जाने, यह भी मेरी ही भाँति सताई हो, समाज के कर्कश पैरों से कुचली हो, पुरुषों के राक्षसी काण्ड का शिकार बनी हो!! इसीलिये तो यह समवेदना प्रकट कर रही है। नहीं तो वेश्या और समवेदना, असम्भव है!! अबोध तो है नहीं! जानती है, आनन्द बाबू यदि विरक्त हो जायँगे तो मेरी आमदनी कम हो जायगी। किन्तु फिर भी करुणा प्रकट कर रही है। हृदय ही तो है!! सविता की आँखों से दो बूँद आँसू गिर पड़े।

आनन्द बाबू चुप रहे! गुलनार और उससे ऐसी बातें! वे आश्चर्य में पड़कर सोचने लगे—क्या उत्तर दें? क्या कहें?

पर उन्हें अधिक देर सोचना न पड़ा! गुलनार ने सविता के ऊपर करुणा की एक निगाह डाल कर फिर कहने लगी—आनन्द बाबू! इनके हृदय में कितनी वेदना है, यह एक स्त्री-हृदय ही जान सकता है। यदि आप बुरा न माने तो मुझे यह कहना पड़ेगा कि आप अपने घर की मुलायम रोटियाँ छोड़ कर, दर-दर टुकड़ों के लिये भटकने वाले बाज़ारू कुत्ते हैं! मुझे क्या मालूम था कि आपके हृदय के अन्दर ज़हर का ऐसा भयानक स्रोत छिपा हुआ है। आप जब अपनी गृह देवी से प्रेम नहीं कर सकते तो किसी बाज़ारू वेश्या से करेंगे, कभी नहीं! वेश्यायें तो किसी से प्रेम की आशा करती ही नहीं। जितना अत्याचार आप इस भोली-भाली अबला पर करते हैं, उतना क्या इस वेश्या पर, जिसकी गोद में आप रात दिन गेंद की भाँति उछलते हैं, कर सकते हैं? नहीं, वह एक ज़रा सी कड़ुवी बात कहने पर, उसी भाँति आपको अपने दरवाज़े से दुतकार देगी, जिस प्रकार निर्लज्ज कुत्तों को दुरदुराया करती है।

वासना मनुष्य को कायर बना देती है। उसकी गुलामी में अफ़यून का वह भयानक ज़हर छिपा रहता है, जो थोड़े ही दिनों में मानवीय शक्तियों को अस्तित्व-हीन करके उन्हें किसी काम का नहीं रख छोड़ता! एक स्वत्वाधिकारी मनुष्य को, उसके

टुकड़ों पर जीने वाली वेश्या इन शब्दों में याद करें। मगर दया हो तब न ! सविता काँप उठी। पर आनन्द कुमार ने कायरों की भाँति, आँखों में निर्लज्ज कामना भर कर उत्तर दिया— "गुलनार ! फिर तुम्हीं फ़ैसला कर दो। मैं किस भाँति इन्हें सन्तुष्ट कर सकता हूँ।"

"फ़ैसला ! गुलनार ने ओज भरे शब्दों में कहा—फ़ैसला मैं क्या कर सकती हूँ आनन्द बाबू। फ़ैसला तो वही कर सकती है, जिसके ऊपर आपने पाशविक अत्याचार किये हैं, जिसके मानवी अधिकारों को कुचलकर, आपने उसे निर्जन कमरे की बन्दिनी बनाकर रखा है। आप, उसी के सामने अपना मस्तक टेकते हुये उसी से अपने अपराधों का फ़ैसला करवाइये ? वह जो कहे, जो आज्ञा दे, उसका यथोचित रीति से पालन करना, यही आपका धर्म है।

"पर—आनन्द कुमार ने उत्तर दिया—मैं, सविता के सामने अपना मस्तक न झुकाऊँगा गुलनार। पुरुष होकर स्त्री से करुणा की भीख, दया की प्रार्थना। न न, यह मुझ से न हो सकेगा। उसने अपराध किया है, मैंने दण्ड दिया है। फिर उसके सामने मस्तक क्यों झुकाऊँ, उससे दया की भीख क्यों माँगूँ ? गुलनार ! कहीं तू बावली तो नहीं हो गई है !

"दूसरों को बावली बनाते हुए, ज़बान कट कर नहीं गिर जाती आनन्द बाबू ! गुलनार ने तीखे स्वर में कहा—वेश्याओं के तलुये चाटने में आपका मान नहीं खो जाता, उनकी बार-बार झूठी खुशामद करने में आपका पुरुपत्व नहीं जहन्नुम में चला जाता, पर इस गृह-देवी के सामने मस्तक टेकने में आपकी सारी मान-मर्यादा आपकी अन्धी आँखों को, अपमान के सागर में तिरोहित होती हुई दिखाई देती है ; हायरी अन्धी दुनियाँ !! इसी का नाम तो अज्ञानता है !!

"किन्तु—आनन्द कुमार ने ज़रा सा शिर उठाकर उत्तर दिया—हृदय ही तो है गुलनार ! तुम्हारे चरणों पर अपना सर्वस्व तक अर्पण करने के लिये तैयार हूँ, पर सविता के नहीं !"

"आनन्द बाबू !—गुलनार ने मुख पर गहरी ज्योति छिटका कर कहा—गुलनार को वह वेश्या न समझिये, जो धातु के शुभ्र टुकड़ों पर, मानवता को भी निःसंकोच लुटा देती हैं। मैं वेश्या हूँ तो क्या ? मानवता को समझती हूँ— दुखिया के दुःख का मूल्य जानती हूँ ! यदि मुझे पहले यह पता होता कि आपके हृदय के कोने में पैशाचिकता का ऐसा नग्न भाव भरा हुआ है तो मैं आपको अपनी छाया तक स्पर्शन करने देती ! पर अब आप कृपा कर मेरे दरवाज़े

पर न आइयेगा—मैं आपकी यह 'मूरत' भी देखना पाप समझती हूँ !"

गुलनार अपनी बात खतम कर झट से बाहर निकल गई। आनन्द कुमार भौंचक्के से होगये! सविता अपनी अन्तरात्मा से सवाल करने लगी—गुलनार मानवी है या देवी !!

—नौ—

वह विलासिनी है। विलास को पसन्द करती है! एक पैसे के स्थान पर दो पैसे खर्च करना उसे स्वीकार, पर कंजूसी से दिन बिताना अच्छा नहीं!! ऊँचे और सुसज्जित महलों में रही है! महल भी ऐसे, जिसके भीतर ही, बाटिका थी, बाटिका में कोयलें बोलती थीं—पपीहे पिहकते थे! फिर उसे छोटा, संकीर्ण और वायुहीन घर क्यों पसन्द आने लगा? वस्त्र भी, वह पतले और अधिक मूल्य वाला ही पहनती है! खद्दर उसके शरीर में

गड़ता है ! वह उसे उतार कर बड़ी निर्दयता से दूर फेंक देती है ! मानो उसे काटता है ! नाम भी उसका छोटा सा, लुभावना है—रमा ! अधिक सुन्दरी तो वह नहीं है, पर उसे कुरूपिणी भी नहीं कह सकते !! उसे तो अपने, उस थोड़े सौन्दर्य का बड़ा अभिमान है ! वह दिन भर लम्बे चौड़े आइने के सामने बैठकर अपना मुख देखा करती है ! मानो प्रियतम का मुख देख रही हो ! पर इस नये घर में उसे कोई सुख नहीं है ! वह कभी-कभी उठकर कहा करती है—भगवान ने मेरी क़िस्मत में आग लगा दी !!

सुशील का विवाह हुए अभी तीन ही चार महीने बीते, पर वह इस थोड़े समय में ही अपने वैवाहिक जीवन से बिल्कुल ऊब उठा है ! उसके नस-नस में असन्तोष की एक गहरी भावना दौड़ चली है ! वह पागलों की भाँति विक्षिप्त बन कर कभी जन-शून्य सरिता के कूल पर बैठता है ! तो कभी निर्जन कक्ष में शान्ति पाने का असफल प्रयास करता है। वह जीवन से डरता नहीं। घात-प्रतिघातों से संघर्ष करना जानता है ! साहसी है ! उसने अपनी दुनियाँ को भरसक सुधारने का बड़ा प्रयत्न किया, पर उसकी स्त्री 'रमा' उसके आदर्शों पर नहीं चलना चाहती ! वह ग़रीब है—साधारण स्थिति का मनुष्य है ! थोड़े ही में अपना काम चलाना चाहता है ! पर रमा !

उसको यह पसन्द ही नहीं ! पन्द्रह बीस रुपये प्रति मास वह अपने शृंगार में ही खर्च कर डालती है ! किसी की बात भी तो नहीं मानती। सुशील की माँ को तो वह अपनी दासी सी समझा करती है। कभी अगर बुढ़िया स्नेह से कातर होकर कहती है—बहू ! जरा मेरे शिर में तेल डाल दो, तो वह ठुनुक कर दूर जा खड़ी होती है और मुँह बना कर कहती है—मुझसे तो यह काम न होगा भाई। शिर में तेल डालने के लिये कोई नौकरानी क्यों नहीं रख ली जाती। बुढ़िया रोने लगती है। उसकी आँखों में पुरानी आशायें एक साथ ही वेदना के रूप में छलक उठती है ! छलकना ही चाहिये। वह जिस सुख के लिये, सुशील से विवाह करने का आग्रह कर रही थी, उसे तो अब नहीं मिल रहा है। यदि वह जानती तो सुशील को अविवाहित ही रहने का आदेश देती ! पहले वह बेचारा भी तो सुखी था। सन्तोष की दो रोटियाँ खाकर सुख से सो जाता था। पर अब ! वह सुख कहाँ ? वह संतोष कहाँ ? दिन-रात परेशान रहता है। नून तेल लकड़ी की चिन्ता में हैरान रहता है। थका हुआ आता है—ओंठ सूखे हुये रहते हैं। घड़े से पानी उँडेलता है तो पीता है ! माँ वृद्ध है, उठा नहीं जाता ! स्त्री को अमीरी का नशा है, सोई रहती है ! बेचारा युवक जीवन से आकुल हो उठता है !

वे चारों

सायंकाल का समय था। कुछ-कुछ अन्धकार भी हो चला था। सुशील जब अपने काम पर से लौटा, तो देखा घर में अँधेरा। खुद चिराग जलाया। पर अभी तक चूल्हे में आग भी नहीं पड़ी है। भूखा प्यासा, ऊपर से यह आपदा! वह आकुल होकर रमा के कमरे में गया। रमा, लम्बी तान कर सो रही थी। आज उससे सुशील की माँ से कुछ कहा सुनी हो गई थी। बात केवल इतनी ही थी कि सुशील की माँ ने उससे एक गिलास जल माँगा और उसको डाँट दिया था। बुढ़िया तो रोकर डाक्टर कुमार के घर चली गई! और रमा लम्बी तान कर पड़ रही। सुशील ने रमा के मुख से चादर हटा कर कहा—रमा, भला अब यह सोने का समय है! क्या चूल्हा नहीं जलेगा? माँ कहाँ गई?

रमा ने ठुनक कर सुशील का हाथ झिटक दिया। सुशील ने सच्चे स्नेही की भाँति फिर हाथ पकड़ कर कहा—रमा! तुम्हें क्या हो गया है? तुम इस तरह क्यों हमेशा क्रोध का कड़ुवा घूंट गले के नीचे उतार के रहती हो। इस तरह तो किसी का गृहस्थ-जीवन संसार में नहीं चल सकता! आदमी ग़रीब होता है तो क्या? पर नहीं, अपने हृदय के सच्चे स्नेह से, अपने गार्हस्थ जीवन को ऐसा सवाँर लेना है कि देखने वाले दंग रह जाते हैं।

पर इस टूटी फूटी गृहस्थी को सवाँरने की मुझमें योग्यता नहीं—रामा ने सुशील को झिड़क कर उत्तर दिया—मैं नौकरानी तो हूँ नहीं कि अकेले घर का काम किया करूँ, दोनों समय अपने हाथों को झुलसा कर तुम लोगों को रोटियाँ खिलाया करूँ। ढेर के ढेर जूठे बर्त्तनों को माँज कर अपने हाथों को काला बनाया करूँ। यदि इसी का नाम गृहस्थ-जीवन है, तो उसको हाथ जोड़ कर नमस्कार करती हूँ। न तो यह सब कुछ मैंने किया है और न करूँगी। रहने दोगे घर में पड़ी क़िस्मत पर रोया करूँगी, न रहने दोगे पीहर चली जाऊँगी!

किन्तु—वेदना की एक गहरी साँस लेते हुए सुशील ने कहा—संसार में सभी अमीर नहीं हैं रमा! सभी शानदार महलों में रह कर, चमकती हुई मोटरों को सड़कों पर नहीं दौड़ाते। देखो, ज़रा आँखें खोल कर देखो! संसार में अनेक नर नारी टूटी-फूटी झोपड़ी में रह कर अपने जीवन के दिन बिताते हैं, करोड़ों दम्पत्ति धूप शीत की तनिक भी परवा न कर अपने गार्हस्थ-जीवन के लिये ही रात-दिन खेतों में काम करते हैं! उनका गार्हस्थ-जीवन, उनको कितना प्यारा है! वे अपने शरीर का रक्त बहा कर भी, अपने जीवन के उस प्यारे पौधे की रक्षा करते हैं! फिर तुम क्यों उसी गार्हस्

जीवन को हेय समझ रही हो रमा ! देखो, वह तुम्हारी आँखों के सामने ही किस प्रकार लुट रहा है—बर्बाद हो रहा है ! क्या उसकी रक्षा करना तुम्हारा परम धर्म नहीं है ?

रमा खीझ सी उठी ! मानो सुशील की करुणात्मक बातों ने उसके ओंठों पर ज़हर का प्याला लगा दिया ! उसने उसके सारे प्रेम-सूत्रों को तोड़कर उत्तर दिया—मुझे इन बड़ी-बड़ी बातों की आवश्यकता नहीं ! मैं तो स्वयं अपने इस जीवन से क्षुब्ध सी हो उठी हूँ ! एक बात भी किसी की सुनना, या किसी से कहना, मुझे पहाड़ की दुर्गम चढ़ाई की भाँति ज्ञात होता है ! यदि तुम्हें इन थोथी बातों से ही मुझे सन्तोष दिलाना था, तो तुमने मेरा विवाह क्यों किया ? विवाह करने के पहिले तुम्हें यह भली-भाँति सोच लेना चाहिये था कि पत्नी के सुखों के लिये घर में साधन है या नहीं। विवाह कर लेना ही तो पुरुषत्त्व का सच्चा धर्म नहीं कहा जा सकता। मैं तो इस टूट-फूट घर की दयनीय परिस्थितियों को देखकर, यह प्रकट रूप से कहूँगी कि तुमने विवाह के बहाने एक ऐसा भयंकर पाप किया है, जिसका काला दाग़ तुम्हारे जीवन पर, जीवन-पर्यान्त अपने अस्तित्त्व के साथ बना रहेगा।

रगों का उष्ण रक्त हिम होगया। सुशील ने रमा को छोड़ दिया। उसी प्रकार जैसे कोई भूल से साँप को पकड़ कर फिर

छोड़ देता है। वह अपने अन्धकार-पूर्ण कमरे में जाकर पड़ रहा! सारा संसार, पर उससे तात्पर्य क्या? कोई उसकी खबर लेता है, कोई उसके जिगर पर हाथ रखकर उसका दर्द पूछता है। भूखा-प्यासा है, दिन भर का थका है! भूख और प्यास की आकुलता से, उस अन्धकार-पूर्ण कोठरी में उसके हृदय की गति बन्द हो जाय तो! कोई मुख भी न देख सकेगा। पर उसकी ममता में, आँसू बहाने वाले, उसके अपने तो दो ही हैं। दोनों निश्चिन्त हैं! अपने सुखों के सङ्कल्प में परिलिप्त हैं! पर देखो तो, उसके हृदय की विशालता! अपने जीवन के सुखों की तनिक भी परवाह न करके सोचता है—कहाँ जाऊँ? क्या परदेश! नहीं पाप होगा—अन्याय होगा! अच्छा तो गला ही घोंट दूँ—नदी में ही डूब कर मर जाऊँ! इस निन्दनीय जीवन से तो मौत ही भली जान पड़ती है! सुला तो चिरकाल के लिये! एक साथ ही चिन्ता के सारे बन्धन अपने आप उखड़ जायँगे! पर नहीं, मेरी माँ, और मेरी स्त्री! जिस समय प्रभात की सुनहली किरणें पूर्व में उदय होंगी उस समय मेरे घर में कुहराम मच जायगा। दोनों अनाथ हो जायँगी—दोनों के जीवन-गगन पर आपदा की काली घटायें घिर जायँगी! पर इस विद्रोह का अन्त भी कभी होगा! लाखों बार चेष्टा कर चुका, पर सफलता मिलने को कौन कहे, निराशा की लपटें

बढ़ती ही जा रही हैं। फिर ?" पर सुशील की अन्तरात्मा के इस 'फिर' के साथ ही बाहर से आवाज़ आई—"सुशील !"

आवाज़ शारदा की थी। सुशील उठकर बैठ गया। और झट से अपने को सावधान कर बोल उठा—भाई शारदा, आओ ! ज़रा, लालटेन जला रहा हूँ !"

शारदा, सुशील के कमरे में चला गया। सुशील ने लालटेन जला कर एक ओर दोनों, थोड़ी देर तक एक दूसरे की ओर बड़ी तन्मयता से देखते रहे ! मानों एक दूसरे की आकृति से कुछ जानने की चेष्टा कर रहे हों ! पर शारदा, अब देर न लगा कर बोल उठा—सुशील ! मालूम होता है, तुमने अभी तक कुछ सुना नहीं ! ओह ग़ज़ब होगया !! तुम्हारी वृद्धा माता इस संसार से चल बसीं ! आज दोपहर में, अपने घर से मेरे घर जा रही थीं कि मार्ग में एक मोटर की पहिया, उनकी बूढ़ी शरीर पर चढ़ गई। और कुचल उठीं ! हम लोग उन्हीं की सेवा—सुश्रुषा में अब तक लगे रहे, इस लिये तुम्हें ख़बर न दे सके ! चलो, अर्थी तैयार है ! हमने सब ठीक कर दिया है !!

शारदा की बात सुनते ही सुशील चीख़ मार कर चिल्ला उठा। उसकी चीख़ से रमा के हृदय में कुछ करुणा उत्पन्न हुई या नहीं यह कौन जाने !!

———

—दस—

आनन्द कुमार के होठों पर कई दिनों से शराब की प्यालियाँ नहीं लगी ! वेश्याओं के रूप का बाज़ार भी तो कई दिनों से बन्द है ! न वे स्वयं जाते हैं और न वे ही उनकी ताजीम बजाने आती हैं ! जैसे उनके जीवन के उस मनोहर व्यापार पर पाला सा पड़ गया हो ! दिन-रात चहल-पहल मची रहती थी, जीवन के आनन्द हँसते रहते थे ! पर सविता !! उसने सब पर तुषार सा फेर दिया। जब से गुलनार बेकार जली कटी सुना

कर गई है, तब से बेचारे चिन्ता के सागर में डूबते-उतराते हैं। वेश्या होकर मेरा अपमान? उसकी शक्ति कितनी थी! वह तो हमारे चरणों पर लोटने के लिये उत्सुक सी रहा करती थी, हमारे चिन्तित अधरों पर मुसकान की मनोहरता देखने के लिये आकुल सी रहा करती थी! उसने अनेकों बार कहा भी था, आनन्द बाबू! मेरे जीवन के दिन आपके अभाव में सुख से नहीं कट सकते! फिर उस दिन उसे हो क्या गया? वह इस तरह आपे से बाहर क्यों हो गई? यह सब सविता की ही करामात है? यह जादूगरनी तो नहीं है! इसने उसकी मत तो नहीं फेर दी!! अवश्य, इसी से तो वह अब मेरा नाम लेना भी भूल गई! जहाँ हमेशा वह मेरे यहाँ पड़ी रहती थी, तीन चार सप्ताह से एक बार सूरत तक न दिखाई! किन्तु अब किया क्या जाय? उसका वह मनोहर रूप, उसकी वे रसवती आँखें उसका वह सुनहला सौन्दर्य! एक साथ ही हृदय में प्रलय की आग लगा देता है! पर सविता, यही तो एक काँटा है—इसने ही तो उसके फूल से कोमल हृदय में वेदना का काँटा गड़ाया है! इसे किसी भाँति यहाँ से हटा देना ही अच्छा! बीमार थी, मर भी नहीं गई! अत्याचार करके तो थक गया! वह इस भाँति, क़ाबू में आने वाली नहीं! आनन्द कुमार दिन रात इसी चिन्ता में निमग्न रहते थे।

उस दिन जब आनन्द बाबू अपने कमरे में पड़े हुए 'सविता' के भाग्य का निपटारा करने में लगे हुये थे, तो बनारस के एक गन्दे मुहल्ले की रहने वाली एक बुढ़िया ने बड़े आदाब से झुक कर उन्हें सलाम किया। बुढ़िया का नाम रहमतिया है! आनन्द कुमार उसे बहुत दिनों से जानते हैं! उस समय से जब कि आनन्द बाबू की जवानी ने, उनकी नसों में वासना की आग लगा दी और वे बनारस के दालमंडी मुहल्ले के एक कोठे पर जा पहुँचे थे! उस समय सबसे पहले पहल, आनन्द बाबू ने वहाँ किसी का यदि मुख देखा तो इसी बुढ़िया का। वह तब से, बराबर इनके यहाँ आती रहती है—नित्य बहलाने वाले नये-नये समाचार लाकर उनके हृदय में आनन्द की लहरें नचाया करती है। आनन्द बाबू ने गर्दन उठाकर कहा—रहमतिया! इस बार तो बहुत दिनों पर दीख पड़ी! क्या कहीं बाहर चली गई थी।

"बाहर कहाँ जाऊँ, बाबू! रहमतिया ने दीनता से उत्तर दिया—एक भाग्य की मारी लड़की मिल गई थी! उसी के फेर में पड़ी थी। वह गुलनार से बहुत खूबसूरत है, बोलती तो ऐसी है; मानो हृदय में मिश्री घोल रही हो! पर बाबू आप उदास क्यों हैं? आपके ओठों पर काली-काली अभागी पपड़ियाँ क्यों पड़ गई हैं? मैंने तो आज की दशा में, अपने बाबू को कभी नहीं देखा था मेरे ख़ुदा!!"

आनन्द कुमार क्या उत्तर देते? दुःखी तो थे ही! बोल उठे—हाँ रहमतिया सचमुच मैं बहुत उदास हूँ! आज कई दिनों से मेरे हृदय में चिन्ता का एक पीड़ा-जनक काँटा गड़ गया है।

"काँटा! कैसा काँटा!! बाबू—रहमतिया ने सहानुभूति के स्वर में कहा—आनन्द कुमार बाबू के हृदय में काँटा, सचमुच बड़े आश्चर्य की बात है! क्या मैं भी सुन सकती हूँ, बाबू, वह कैसा और कौन सा काँटा है!!

वेदना की एक गहरी साँस लेकर आनन्द बाबू कहने लगे—रहमतिया तुम्हें यह सुन कर आश्चर्य होगा कि, मेरे प्रेम में तड़पने वाली गुलनार ने मुझसे लड़ाई करली है। और इसका कारण मेरी स्त्री सविता है। सविता ने उसे बहका कर अपनी ओर कर लिया है। और अब दोनों मिल कर मेरे जीवन का सर्वनाश करना चाहती हैं!"

"गुलनार! वह कल की छोकरी, उसकी क्या विसात बाबू—रहमतिया ने उत्तेजित होकर उत्तर दिया—अभी तो वह कल लोगों के सामने पैसे-पैसे के लिये हाथ पसार रही थी। आपकी दया! कुछ देखने योग्य बन गई है। खुदा, मुबारक रक्खे आपकी दौलत! एक नहीं सैकड़ों गुलनार, आपके क़दमों का बोसा लेने में, अपना गौरव समझेंगी! आज मैं, जिसकी

ख़बर लेकर आपके पास आई हूँ, उसकी बराबरी में तो गुलनार कौड़ी का भी मोल नहीं रखती !"

आनन्द बाबू के अधरों पर वासना की एक मुसकुराहट नाच उठी ! उन्होंने आशा की दृष्टि से रहमतिया की ओर देख कर कहा—हाँ, यह तो सच ही कह रही है। पर मेरे दिल में जो काँटा चुभा है, रहमतिया, वह मेरे दिल में ही सदैव बना रहेगा। जब तक 'सविता' इस घर की चहारदीवारी से किसी भाँति बाहर नहीं हो जाती, तब तक यह चिन्ता मेरे सामने से नहीं टल सकती। पर मैं उसे कैसे घर से अलग करूँ, कोई युक्ति प्रत्यक्ष रूप में आँखों के सामने नहीं आती।

रहमतिया ने सशंकित दृष्टि से आनन्द कुमार की ओर देख कर कहा—सविता ! क्या आपकी स्त्री, बाबू जी ?

"हाँ, रहमतिया—आनन्द कुमार ने उत्तर दिया—मेरी अपनी स्त्री ही। क्या कोई युक्ति है ? मैं तो उससे आकुल हो उठा हूँ—उसके शरीर की छाया से घृणा करता हूँ। बीमार थी, पर उस अभागी को मौत भी न आई। नागिन की भाँति मुझे डसने के लिये बच गई ? हाय उसका ज़हर, मेरे सम्पूर्ण शरीर में इस भाँति भिनता जा रहा है कि मैं यदि थोड़े ही दिनों में इस दुनिया से कूच कर जाऊँ तो आश्चर्य की बात नहीं।

रहमतिया, चालाक औरत! सैकड़ों को उँगली के संकेत पर नचाती है। आनन्द बाबू सविता से बहुत नाराज़ हैं, उसका मुख देखना, सचमुच पाप समझते हैं। फिर क्या? सविता के चले जाने पर तो उसके हाथ पर चाँद है। गुलनार भी नहीं है, झट से बोल उठी—युक्ति तो बहुत आसान है बाबू! उसके चरित्र पर कोई कलंक लगा कर मैके में भेज दीजिये। सचमुच स्त्रियाँ बड़ी अज्ञान होती हैं। चाहती हैं, पतियों के शिर पर चढ़ी रहें। यह तो सचमुच बड़ी आफ़त है बाबू जी।

आनन्द कुमार को मानो एक सहारा सा मिल गया। उन्होंने सन्तोष की एक हल्की साँस लेकर उत्तर दिया—रहमतिया युक्ति तो अच्छी है, पर इसके प्रयोग के लिये तुम्हें तो यहाँ रहना ही पड़ेगा। बोलो रहोगी?

रहमतिया, भला कब इसे अस्वीकार करेगी? उसको तो ऐसी भोली-भाली स्त्रियों को अन्धकार के गहरे गढ़ों में फेंक देना व्यापार है—व्यवसाय है!

———

—ग्यारह—

सूना घर ! घर में केवल अकेली रमा ! चूड़ी वाली उसकी कलाई में एक रेशमी चूड़ी डालती हुई उसके मुख की ओर देख कर बोल उठी बहू ! मैं तुम्हें जब देखती हूँ तब उदास ही ! आँखें भिगी रहती हैं, मुँह उतरा सा ! ऐसी जवानी में शरीर की यह दशा ! सूख कर पीली पड़ गई हो। कई बार जी में आया कुछ पूछूँ ! पर डरती थी, कहीं बुरा न मान बैठें ! किन्तु फिर भी आज मुख से निकल ही तो पड़ा !

रमा रो उठी ! आँखों मे आँसू की अलग-अलग दो धारायें बह चलीं। मानो सतायी हुई हो—किसी ने उसके ऊपर राक्षसी काण्ड का अभिनय किया हो ! कहने लगी—भाग्य ही तो है ! संसार में सभी के भाग्य अच्छे तो होते नहीं ! जब से इस घर में आई हूँ, प्रत्येक क्षण रोते ही बीतता है। कभी सुख और सन्तोष की रोटी नहीं खा पाती। ऊब उठी हूँ, पर क्या करूँ ? कोई चारा नहीं—कोई बस नहीं।

चूड़ी वाली स्त्री कला में पटु ! रोज़ ही सैकड़ों स्त्रियों से बातें करती है ! क्यों चूकने लगी ? झट से आँखों में बनावटी करुणा नचा कर बोल उठी—बहू ! सचमुच तुम लोगों में स्त्रियों के लिये यह बड़ा भयंकर जुल्म है। बेचारी स्त्रियाँ, घर की चहारदीवारियों के अन्दर अनेकों अत्याचार सहती हैं, पर मुँह खोल कर जीभ तक नहीं चला सकतीं। रोज अनेकों घरों में जाती हूँ बहू ! देखती हूँ, तुम्हारी ही भाँति अनेकों तड़पती रहती हैं—दुःख की भयंकर ज्वाला में जलती रहती हैं। कौन उनके जी का हाल पूँछे—किससे वे अपने जिगर की तड़पन कहें। सतर्कता उन पर ऐसी रक्खी जाती है कि हमसे एक बात भी नहीं करने पातीं। मै तो कहूँगी बहू कि तुम लोगों में से हम लोगों में लाख दर्जे अच्छा ! पुरुष-स्त्री में पटी तो पटी नहीं तलाक दे दिया !

सुशील, सुन्दर हैं, युवक हैं ? आँखों में उन्माद भी है, शरीर में स्वास्थ्य भी। परिश्रमी भी हैं, शक्ति वाला भी ! न दुःख की परिस्थिति से निराश होता है और न सुख से उल्लास-पूर्ण उसका एक सन्तोष है—उसके जीवन की एक सीमा है। वह उसी में रहता है—दुखियों से स्नेह भी करता है! आदर्शवादि है, है संयम शील ; भूखा रह जाता है, पर किसी के सामने हाथ नहीं पसारता ! फटे कपड़े पहिन कर आफ़िस चला जाता है, पर किसी के सामने अपनी दीनता नहीं प्रकट करता। पर रमा ! वह तो उसकी ही भाँति, उदार हृदय वाली नहीं है ! उसका तो सिल्क की मुलायम साड़ी के बिना काम ही नहीं चलता। इसी लिये, दोनों में कभी-कभी छोटी-मोटी कलह भी हो जाती है। सुशील चाहता है, कलह न हो, प्रेम की दुनिया आबाद हो। पर वह उससे प्रेम ही नहीं करती ! क्यों, दिल ही तो है। जिस तरह सुशील के दिल में, प्रेम की एक भयानक आग लगी थी उसी प्रकार रमा के हृदय में भी तो। सुशील 'अपनी सविता को' भूल सा गया है, पर 'रमा' अपने 'रज़ा' को अब भी याद किया करती है—अब भी उसकी स्नेह-स्मृति में वह जिगर के टुकड़े आँसू रूप में बहाया करती है। पर लाचार है, 'रज़ा' को अपनी ख़बर कैसे दे ? पत्र भी लिखे तो डाकखाने में छोड़े कौन ? 'रमा' चिन्ता में पड़ी

रहती थी—पर आज उसे एक सहारा सा मिल गया ! उसकी नस-नस में एक उन्माद सा नाच उठा। उसने चूड़ी वाली की ओर स्नेह से देखकर कहा—सचमुच हम लोगों के समाज में स्त्रियों की बड़ी दयनीय अवस्था है। मैं तो समाज के इस बन्धन को तोड़ कर निकल जाना चाहती हूँ, पर.........!

"पर क्या बहू—चूड़ी वाली बड़ी उत्सुकता से बोल उठी—क्या तुम अपने दिल की बात मुझसे छिपाना चाहती हो ! मैंने सैकड़ों ऐसी सतायी हुई स्त्रियों को मार्ग बता कर उनका उद्धार किया है। तुम से तो वर्षों से जान पहिचान है, दिल खोल कर तुम्हारी सहायता करूँगी बहू, कहो न अपने दिल की बात ?"

रमा ने चूड़ी वाली की ओर आँख उठाकर देखा ! उस समय सचमुच उसकी आँखों में एक करुणा खेल रही थी। करुणा सूनी है, या उसमें सचमुच स्नेह की कामनायें हैं, इसका निर्णय करना, वह, सुशील के गृह के त्याग को अपना 'व्रत' मानने वाली 'रमा' क्या जाने ? उसने उसकी ओर देख कर कहा—यदि तुम मेरी सचमुच सहायता करना चाहती हो तो क्या मेरा एक पत्र, जहाँ मैं कहूँ, वहाँ पहुँचा दोगी ?"

"क्यों नहीं बहू ! चूड़ी वाली ने अपना विश्वास जमाते हुये कहा—मैं तो आपकी चेरी हूँ ! बतलाइये कहाँ पत्र ले जाना होगा और किसको देना होगा ?

"रामापुरा मुहल्ला तो तुम जानती होगी—रमा ने कहा—वहाँ सैयद अमीर अली, नाम के एक बैरिस्टर रहते हैं! नाम पूँछने ही से पता चल जायगा। काफ़ी मशहूर आदमी हैं। उनके लड़के का नाम है 'रज़ा'! 'रज़ा' को ही तुम मेरा पत्र देना! पत्र पाकर वे तुम्हें इसके बदले में पुरस्कार देंगे!"

चूड़ी वाली पत्र ले जाने के लिये तैयार होगई! 'रमा' को कुछ और लिखना तो है नहीं! लिखना तो बहुत है पर लिखने का समय तो चाहिये! डर है, कहीं सुशील न आ पहुँचे! किन्तु अभी तीन ही तो बजे हैं! पर शारदा, वह भी तो कभी-कभी आया करता है। शायद वही आ जाय। पूरा सुधारक है। चूड़ी वाली से घुल-घुल कर बात करते हुये देख कर तुरन्त बिगड़ उठेगा! रमा ने जल्दी-जल्दी जिगर की दो चार सतरों के साथ, अपने मकान का पूरा पता लिख कर चूड़ी वाली को दे दिया! वह लेकर चली गई। 'रमा' गिन-गिन कर प्रतिक्षा की घड़ियाँ काटने लगी!

पाप का अभिनय! सुशील क्या जाने? कोई मौजूद तो था नहीं, कि उसके कानों में ख़बर डाल देता? आकाश अवश्य काँप उठा होगा—दीवालें अवश्य हिल गई होंगी। पर स्नेही युवक! उसका दिल न हिला! उसने कुछ देखा भी तो नहीं था—कुछ सुना भी तो नहीं था! आफ़िस से, थका हुआ

आया। खाया, पीया और सो रहा। सबेरा हुआ, फिर वही चिन्ता, फिर वही काम!

दोपहर बीत रहा है। एक बजने के निकट है। 'रमा' व्याकुल होकर दरवाजे की ओर आँखें लगाये हुये है। कहीं द्वार की जंजीर तो नहीं बजी, वह बड़ी सतर्कता से कानों को क्षण-क्षण पर सचेत कर सुन लेती है। पर उसे अब अधिक देर तक चिन्ता करने की आवश्कता न पड़ी। चूड़ी वाली 'रज़ा' के साथ ही उसके सामने हाज़िर होगई। दोनों एक दूसरे को देखकर मुसकुराये। चूड़ी वाली, दोनों की माखन-मिश्री मिली हुई मुसकुराहट को देखकर वहाँ से खिसक गई!

रमा ने लपक कर उस मुसलमान युवक के कन्धों पर हाथ रख दिया। मानो उसे देख कर उसके अन्तर का प्रेम उबल पड़ा हो। अभागा सुशील! तड़पता ही रह गया। आहों से कहारता ही रह गया। पर सविता का प्रेम न पा सका। यदि पाता तो सचमुच निहाल हो जाता—रमा को अन्तर के एक कोने में छिपा कर रख लेता। पर भाग्य! एक सुशील है और एक रज़ा है। एक अपनी वस्तु पर अधिकार पाने के लिये तड़पता है, मगर वह चाहती ही नहीं, और दूसरे के हाथ में जाकर वही देखो किस प्रकार क्रीड़ा कर रही है! संसार है, संसार! अपने पराये बन जाते हैं, झूठे सच्चे

हो जाते हैं। रमा ने अधरों पर अन्त का सारा स्नेह बटोर कर कहा—रज़ा ! क्या तुम मुझको भूल गये थे ? जिस दिन से मैं यहाँ आई हूँ, सच कहती हूँ, और आँसू बहाते ही दिन कटता है ! अभी सोचती थी, भाग जाऊँ यहाँ से और तुम्हारे चरणों में सुख-संतोष की साँस लूँ ? पर हिम्मत न पड़ती थी—वियोग के कर्कश: आघातों को मन ही मन सोच कर बैठ जाती थी ! कहते-कहते दो बूँद आँसू रमा के कपोलों पर ढुलक पड़े !

रज़ा ने अपनी रूमाल से झट से उसके आँसू पोंछ डाले और फिर उसकी ठुड्डी पकड़ कर कहने लगा—रमा, क्या तुम भी भूल जाने की चीज़ हो ? तुम्हारा स्मृति का मनोहर चित्र तो प्रति-क्षण मेरे हृदय-पट पर दौड़ा करता है। कल तुम्हारा जब पत्र मिला तो इतनी खुशी हुई कि कुछ कह नहीं सकता ! देखो तुम्हारे प्रेम के उन्माद में ही तो इस पराये घर में तुमसे इस भाँति बातें कर रहा हूँ ! कोई आ पहुँचे तो; फिर जेल ही जाना पड़े ! मगर तुम्हारे प्रेम के लिये एक बार शिर पर विपत्तियों का पहाड़ भी उठाने के लिये तैयार हूँ रमा !! किन्तु इस तरह हम तुम दोनों कब तक वियोग की ज्वाला में तड़पते रहेंगे ? कब तक एक दूसरे से दूर रह कर जीवन को झुलसाते रहेंगे क्या तुम यहाँ से······?

रमा जैसे पहिले ही से तैयार सी हो बोल उठी—हाँ रज़ा! मुझे कुछ भी आपत्ति नहीं। यदि तुम्हारे·······तो तब मैं तुम्हें बुलाती क्यों? मैं तो इस घर से बिल्कुल ऊब सी उठी हूँ! मेरा एक क्षण यहाँ प्रलय के समान ही कटता है! ईश्वर जाने, कब इस नरक-भूमि से उद्धार होगा?

पर रमा, रज़ा ने मुसकुरा कर उत्तर दिया—इस भाँति हम दोनों का यहाँ से चलना ठीक नहीं? तुम्हारा पति अवश्य हम दोनों की खोज करेगा! यदि कहीं पता चल जायगा तो फिर शिर पर बड़ी आफ़त आ जायगी! इसलिये यदि तुम मेरी राय मानो, तो उसे······दे दो?

ज़हर? रमा एक बार काँप उठी! मगर उस नकली हुण्ठल में शक्ति ही कितनी थी। एक बार फिर ज़ोर की हवा चली और वह लुढ़क कर भूमि पर गिर पड़ी। रज़ा ने उसकी स्वीकृति पर ज़हर के छोटे-छोटे कण लाकर उसके हाथों पर रख दिये। उन ज़हरीले कणों को देख कर उसकी आँखों में कम्पन की धारा दौड़ी या नहीं यह कौन जाने?

———

—बारह—

बरसात की अन्धकार मयी रजनी में रिमझिम पानी बरस रहा है। बादलों की कड़क, बिजलियों की चमक, एक साथ ही हृदय में भय का भीषण भाव बिछा देती है। पर उसे कुछ चिन्ता नहीं। आगे पैर बढ़ाती चली जा रही है। डरती भी नहीं, बरसात की साँवली भूमि। कोई साँप काट ले तो, पर प्राणों की ममता हो तब न! दुखिया है! जीवन से आकुल हो उठी है। पग-पग पर मृत्यु का आह्वान सा कर

रही है ! तभी तो इस अन्धकार में घर से निकली है ! जीवन से ऊबे हुये मनुष्य की सचमुच यही दशा हो जाती है !!

चलते-चलते वह रुक गई ! एक स्थान पर खड़ी होगई ! उसने देखा दीपक का धुँधला प्रकाश ! वह सोचने लगी—क्या मैं वहाँ जाऊँ, रहने वालों से थोड़ी देर के लिये आश्रय की भिक्षा माँगू ? नहीं नहीं ऐसा न करूँगी ! पाप होगा ! अन्याय होगा !! पाप के काले धब्बों मे विकृत हुए मुख को मैं किसी मनुष्य को न दिखाऊँगी ! पर पाप तो मैंने किया नहीं ! अत्याचारी संसार झूठा लांछन लगा दे तो इससे क्या ? किन्तु जब माँ-बाप ही के यहाँ नहीं गई तो यहाँ न जाऊँगी ! इसी तरह संसार में भटकती रहूँगी ! पर यह भी तो अज्ञानता है ! विचार जीवन किस काम का ? कब तक भटकती रहूँगी ! चलूँ कदाचित् किसी हृदय धारी से भेंट होजाय ! कुछ सहायता कर दे !!

युवती उस प्रकाश की छाया में जाकर, एक वृक्ष के नीचे धीरे से खड़ी होगई ! देखा, आठ-दस घास फूस के बने हुए छप्पर ! प्रत्येक छप्पर के ऊपर भारत की राष्ट्रीय पताका ! युवती चंचल हो उठी ! ये कौन हैं ? यहाँ निर्जन स्थान में क्यों रहते हैं ? पर उसे अधिक देर तक तर्क-वितर्क करने का अवसर नहीं मिला ! एक युवती जो, छप्पर में अभी तक जाग रही

थी, किसी आदमी की आहट पाकर बाहर निकल आई ! उस समय पानी बरसना बन्द हो गया था ! युवती ने लालटेन का मन्द प्रकाश ठीक कर देखा—एक युवती भीगी हुई वृक्ष के नीचे खड़ी है।

कौन, इस निर्जन स्थान में, बरसात की अँधेरी रात में ! इस तरह भीगी हुई अकेली वृक्ष के नीचे ! कोई देवी तो नहीं भारत माता का दुखिया स्वरूप तो नहीं ! युवती थोड़ी देर के लिये भय से कातर सी हो उठी ! उसका मन, उसका हृदय नाना विचारों के झूले पर झूलने सा लगा ! पर इस भाँति वह कब तक ? वह तुरन्त लौट कर अपने छप्पर में गई ! और अपनी दो चार सहचरियों को जगा कर फिर उसी स्थान पर आकर खड़ी होगई ! सब के दिलों में विचित्र उत्सुकता ! आँखों में आश्चर्य का भाव भर कर देखा—वह सचमुच वृक्ष से सट कर खड़ी है। उसमें से एक ने बड़े साहस से पूँछा—बहन तू कौन है ? बरसात की इस अन्धकार-पूर्ण रजनी में निराश्रिता की भाँति यहाँ क्यों खड़ी है ?

मैं सचमुच निराश्रिता ही हूँ बहन—उधर से करुणा के साथ आवाज़ आई—वासना से भरे हुये पागल संसार ने, इस अँधेरी रात में मुझे ठोकर मार कर निकाल दिया है ! मार्ग में वर्षा घन घोर संग्राम करती हुई आगे चली जा रही

थी ! तुम्हारे दीपक का क्षीण प्रकाश देख कर यहाँ चली आई ! सोचा, शायद एक रात के लिये आश्रय की भीख मिल जाय ! क्या दया करोगी ?

क्यों नहीं बहन ! उन सबों ने उसके पास जाकर उत्तर दिया—यह स्वयं सेविकाओं का आश्रम है ! दुःखियों की सेवा करना ही हम लोगों का धर्म है ! चलो आश्रम में चलो ! तुम्हारे कपड़े बुरी तरह भीग गये हैं !

युवती आश्रम में चली गई ! थोड़ी ही देर में उसके अशांत हृदय ने शान्ति का अमर सुख प्राप्त कर लिया ! वह सेवा वृत्ति, वह विशाल हृदय, वह सर्व व्यापी ममता, एक साथ ही सब का राज्य, उस घास-फूस की बनी हुई झोपड़ी में देख कर वह अपने को भूल सी गई। और स्वस्थ होकर कहने लगी बहन ! तुम लोगों की सेवा-वृत्ति, तुम लोगों का मानव प्रेम और तुम लोगों की सच्ची उदारता देखकर तो, अपने सारे दुःखों को भूल सी गई। यह महान् सुख, जो मुझे इस समय, घास-फूस की बनी हुई कुटिया में मिल रहा है, अपने जीवन में कभी नहीं मिला था। पर इस जन-शून्य-स्थान में, तुम लोग घास-फूस की कुटिया बनाकर क्यों पड़ी हो ?

"आश्चर्य है तुम अभी तक हम लोगों के कार्य में अनभिज्ञ हो—उनमें से एक ने उत्तर दिया—कल प्रातःकाल, हम लोग

इस सामने वाले बड़े मैदान में नमक बनायेंगी। यहाँ की खारी ज़मीन से, नमक बड़ी आसानी से निकलता है! आज इस रात में तुम, हम लोगों को यहाँ देख रही हो और कल देखोगी कि हम सब की सब जेल की लारी में बन्द कर जेलों में पहुँचा दी जायँगी। पर बताओ तुम कौन हो? इस अन्धकार-पूर्ण रजनी में कहाँ जा रही हो?

युवती ने संक्षेप में अपनी करुण-कहानी सुना डाली। और फिर वेदना की एक गहरी साँस लेकर कहा—बहन, क्या मेरी एक प्रार्थना स्वीकार करोगी?

'क्यों नहीं, कहो—एक स्वयं सेविका ने उत्तर दिया—हम लोग जी-जान से तुम्हारी सहायता करने के लिये तैयार हैं! यदि आवश्यकता होगी तो, प्राणों को भी निकाल कर तुम्हारे सामने रख दूँगी!!

युवती कुछ सकुचाई! मानो, स्वयंसेविका की, ओजस्वी वाणी ने उसके ऊपर कर्त्तव्य का एक भार लाद दिया हो! पर थोड़ी देर तक चुप रह कर उसने धीरे से उत्तर दिया—नहीं, बहन दया रक्खो! यह सब हमें कुछ न चाहिये। मैं चाहती हूँ कि मुझे भी, तुम लोग अपने दल में सम्मिलित कर लें!!

एक अपरिचित स्त्री को सत्याग्रह के मैदान में?! पता नहीं उसका स्वभाव कैसा हो? वह किसी असामयिक घटना से

उत्तेजित होकर किसी पुलीस के अधिनायक को गाली दे दे तो !! एक ने उसके हृदय पर भय का भाव डालते हुये कहा—मगर हम लोगों के दल में सम्मिलित होकर तुम्हें जेल जाना होगा, भूखा रहना पड़ेगा।

"मैं यह सब बड़ी दृढ़ता से सह लूँगी बहन"—युवती ने उत्तर दिया।

"अच्छा, तुम्हारा नाम"? स्वयंसेविका ने पूँछा !

"सविता" युवती ने उत्तर दिया।

'सविता' उसी रात के अन्धकार में, दीपक की क्षीण ज्योति के सामने स्वयंसेविका बना ली गई। उसे 'सत्याग्रह शब्द' की भली प्रकार व्याख्या बता दी गई। दूसरे दिन प्रातःकाल, सूरज की सुनहली किरणें जब पूरब से निकलीं तो सविता के शरीर पर खद्दर की साड़ी और हाथ में राष्ट्रीय-पताका थी। वह अपने परिवर्त्तन के इस भव्य रूप पर, स्वयं अपने को मन ही मन न्योछावर सी कर रही थी !!

—तेरह—

'रमा ! मेरी रमा !! एक गिलास पानी ! हाय गला सूखा जा रहा है—न जाने क्यों हृदय में भीषण ज्वाला धधकती जा रही है—सुशील मूच्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा ! पर कौन कोई नहीं घर सूना है, रमा तो उसे मृत्यु की गोद में सुला कर रज़ा के साथ ! बेचारा, अभागा युवक ! संसार में, अकेले ! कोई गला तक सींचने वाला नहीं। थोड़ी देर मूर्च्छना की गोद में, बेसुध पड़ा रहा। पर संसार पर तो उस ईश्वर का शासन

है, जो अपनी करुणा से ग़रीबों तक को सुखी किया करता है—वही तो संसार की प्रत्येक घड़ियों का राजा है! दिन का प्रकाश हो, या रात का घना अन्धकार! संसार की कोई घटना, उस की आँखों से बचकर बीत नहीं जाती! फिर सुशील के निरपराध प्राण, यों ही मुफ़ में कैसे लुट जाते! उसके पवित्र आस्तित्व की मर्यादा घट जाती! मूर्च्छित सुशील चौंक कर उठ बैठा! और दो तीन वमन करने के बाद, फिर, मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा! किन्तु इस बार उसकी मूर्च्छना में, भयंकर ज्वाला नहीं, थोड़ी सी बेचैनी थी! प्राण संहारक ज़हर के टुकड़े वमन के साथ बाहर निकल आये!!

प्रातःकाल सूर्य की सुनहली किरणों ने सुशील को खोद कर जगाया—शब्द गति वाली जीवन-दायी वायु ने उसके मस्तिष्क में चेतना सी डाल दी। वह उठकर बैठ गया!! मुख कुम्हलाया हुआ—शरीर थका सा!! देखा, सामने ज़हर के काले-काले टुकड़े!! अन्तरात्मा चिल्ला उठी, "धोखा"! आकाश ने भी अपनी मौन भाषा में दुहरा कर कहा—'धोखा'! पर यह तो नई बात नहीं—वह मन ही मन सोचने लगा—संसार धोखे के आवरण के नीचे छिपा हुआ है! प्रति-दिन इसी भयंकर विश्वास घात के कारण ही तो बच्चों का दम घोंटा जाता है, स्त्रियों का सर्वस्व अपहरण किया जाता है और पुरुषों को जहन्नुम के रास्ते

पहुँचाया जाता है ! ओह यह विषैला 'विश्वासघात'। किसने इसका निर्माण किया ! एक तरफ़ सुन्दर 'विश्वास' है और दूसरी ओर यह भयंकर 'अविश्वास'। दोनों की शाब्दिक लिपि में तो थोड़ा ही सा अन्तर है, पर दोनों के अर्थ में कितनी गुरुता और कितनी लघिमा !! एक को देख कर हृदय में असीम आह्लाद उत्पन्न होता है और दूसरे को देख कर भयंकर भय !! एक सज्जनों और उदार हृदय वालों की वृत्ति है तो दूसरी राक्षसों की। रमा ! उसने भी इसी राक्षसी वृत्ति को अपनाया—इसी का सहारा लिया !! उसने मुझे ज़हर दिया, मुझे सदा के लिये सुला देने की चेष्टा की ! क्यों, कौन जाने ? उसके ऊपर मैंने कोई भीषण अत्याचार तो किया नहीं था ? पर वह गई कहाँ—क्यों इस भाँति सहसा अदृश्य होगई ? क्या मैके ? पर मैके जाने के लिये मुझे ज़हर देने की क्या आवश्यकता थी !! कहती, मैं स्वयं पहुँचा देता ! तो फिर क्या किसी गुप्त-प्रेमी के साथ !! नहीं, वह मेरी स्त्री है !! उस पर यह लाँछन !! ओह मैं कितना भूला हुआ हूँ ! विश्वास ! क्या अब भी तुम मेरे हृदय में स्थिर हो। देखो, मेरा सर्वस्व लुट गया। पर लुट जाने दो, कोई चिन्ता नहीं। मैं कंगाल होकर के भी तुम्हें न छोड़ूंगा—तुमसे प्रेम करूँगा। तो क्या रमा की खोज करूँ। नहीं नहीं, वह अब मेरे सामने न आवेगी,

मुझे देख कर लज्जित होगी। पर अब अपना कर्त्तव्य! क्या इसी भाँति इस भयानक घर में। नहीं, अब न रहूँगा—संसार में ईश्वर के प्रेम की राग गाऊँगा। संसार में है ही क्या? किस पर अभिमान करूँ किसकी ममता में प्राणों को फँसाऊँ! सब ठोकर मार कर अलग होगये। किसी ने तनिक करुणा भी न की। मा, जीवन समाप्त कर इस लोक से चल बसी, स्त्री जहर का कड़वा घूंट पीला कर अदृश्य होगई। ओह! मैं कितना भूला हुआ था? मेरी विचार शक्तियाँ किस भाँति अज्ञान के पर्दे में असत्य का अभिनय कर रही थीं! रमा! तू जीती रही, तुम्हारी वे उँगलियाँ जिनके सहारे से तुमने जहर की रोटी बना कर मुझे खिलाई थीं, सदैव अपनी सुन्दरता से तुम्हारे हाथों में बनी रहें! यदि हम अभागे के ऊपर असीम कृपा कर के तुम जहर के ये सुन्दर टुकड़े मुझे न खिलाती तो आज संसार की असारता का हृदय-विदारी चित्र मेरी आँखों के सामने न घूमता। मैं यह कदापि न जानता कि संसार में विश्वास की रागिनी ही एक सत्य है! इसी से जहर देने पर भी मैं तुम्हें प्यार करता हूँ, आशीर्वाद देता हूँ रमा!! सुशील कुछ देर के लिये अधीर सा हो उठा। पर वह जब उठ कर खड़ा हुआ तो उसके हृदय में साहस की एक ज्योति खिलखिला कर हँस रही थी—संसार की असारता तथा उसके छलिया-स्वरूप पर

भयंकर क्रोध नाच रहा था ! वह काल की भाँति प्रचण्ड बन कर अपने घर की संचित चीज़ों को एक-एक कर के भूमि पर पटकने लगा। किसी चीज़ को हाथ में लेता और उस पर एक निगाह डाल कर भूमि पर पटक देता। न सोचता उसमें उसका कितना पैसा लगा है ! पैसों की तो उसे अब ममता ही नहीं रह गई ! संसार तो उसे सूना सा लगता है, बिल्कुल कँटीली झाड़ी ऐसा। यदि वह पकड़ पाता तो अवश्य उसे भी निर्दयता पूर्वक भूमि पर पटक देता !!

अपने घर की सम्पूर्ण ममता कुचल कर जब सुशील घर से निकल कर बनारस से बाहर गया तो उसके हाथों में एक तम्बूरा और शरीर पर कपारा वस्त्र थे। वह बड़ी वेदना के साथ तम्बूरे के तारों को झनकार कर गा रहा था !

'जग में कोई नहीं है अपना"…।

—चौदह—

गुलचीं। रहमनिया की वह नई लड़की !! उसका रूप और सौंदर्य सचमुच बड़े गज़ब का है। उसने एक ही बात में मेरे प्रियतम—आनन्द बाबू के हृदय में घर सा कर लिया। वे उस पर लट्टू हो गये—उसके उठे हुए मादक पौधों पर अपने को बिलकुल भूल से गये। वह जो कुछ कहती है, वह वही करते हैं। कहती है बैठ जाइये तो बैठ जाते हैं। कहती है, उठ जाइये तो उठ जाते हैं ! जैसे उनकी आँखों में उसने जादू

की कोई सलाई घुमा दी हो ! सविता का तो कभी नाम ही नहीं लेते ! मानो वह सचमुच उसके लिये विष की वह प्याली थी ! जिसे उन्होंने निर्दयता पूर्वक तोड़ दिया हो ! उस दिन सविता के पिता, विक्रम बाबू जब सविता से मिलने के लिये आये तो उन्होंने साफ़ साफ़ कह दिया—साहब आपने तो मेरा गला घोंट डाला—मेरी सारी मान-मर्यादा मिट्टी में डाल दी ! ऐसी लड़की गले बाँध दी कि कुल की सारी मान-मर्यादा ही डुबा दी ! न जाने किसके साथ कहाँ भाग गई। अफ़सोस ! मैं तो अब कहीं मुँह दिखाने लायक नहीं रहा ! क्या करते बेचारे ? आये थे खुशी-खुशी ! और लौट गये वेदना का गहरा भार लेकर !!

गुलचीं ! कलापुर ! रहमतिया की सिखाई हुई। जब रहमतिया का यौवन था, जब उसके रूप का बाज़ार लगता था और जब वह कोकिला की भाँति पिहक कर, लोगों के हृदय में शराब उँडेलने की शक्ति रखती, तो न जाने कितने अमीरों को एक मिनट में कंगाल बना दिया था—कितने युवकों की रासकी छीन कर उन्हें मार्ग का भिखारी कर डाला था ! फिर गुलची ! उसी की तो सिखाई है । कब चूकने लगी। उसने उसी की सम्मति से आनन्द बाबू के हृदय में प्रेम का शर्बत घोल कर उनका सब कुछ अपना कर लिया।

उन्होंने खुशी-खुशी अपनी सारी सम्पत्ति उसके नाम लगा दी! सोचा, गुलचीं का प्रेम, शराब की प्याली और वासना की पूर्ति !! इसके अतिरिक्त और क्या चाहिये? चाहिये तो बहुत, पर आँखों में प्रकाश हो तब न। कोई सुझाने वाला भी तो नहीं था! घर में सविता और स्वयं! दो ही उस सम्पत्ति के स्वाधिकारी थे! सविता, ज़हर की प्याली थी! उसे तो वे अपने हाथों ही तोड़ चुके थे! फिर उसको इस लुटती हुई दुनिया को देख कर कौन उनकी पागल आँखों में चेतना की सलाई घुमाता !!

पर वासना की कच्ची दीवालों के सहारे खड़ा हुआ प्रेम का वह महल कब तक सुरक्षित रह सकता था! अभाव का एक गहरा झोंका आया और उसे हिला कर चला गया। न अब वह गुलचीं का प्रेम रह गई और न वह शराब की प्याली! आनन्द कुमार के तकाज़ा करने पर गुलचीं ने उत्तर दिया—इतनी अधिक शराब नहीं पीई जाती आनन्द बाबू! मैं आपको सम्मति देती हूँ कि आप शराब पीना छोड़ दें! यदि आप इसी प्रकार शराब की प्यालियाँ ढुलकाते रहेंगे तो मुझे विवश हो कर कहना पड़ेगा कि आप मेरे मकान पर न आया करें !!

ठेस से हृदय की तंत्री बज उठी! आँखों की वासना

खुमारी उतर गई! आनन्द कुमार ने आश्चर्य चकित होकर कहा—यह क्या कह रही हो गुलचीं? क्या कहीं कोई नशा तो नहीं खा लिया है? मैं वही आनन्द कुमार हूँ, जिसके चरणों पर लोटने के लिये तुम जी जान से तरसा करती थी।

मगर, गुलचीं ने उत्तर दिया—आप भी मेरे प्रेम के लिये तरसा करते थे! बुरा मानने की कोई बात नहीं! मैं यह नहीं चाहती कि मेरी सम्पत्ति शराब की प्यालियों में इस प्रकार बर्बाद की जाय।

तुम्हारी सम्पत्ति! क्या विश्वासघात—आनन्द कुमार ने आश्चर्य में पड़ कर कहा—तुम्हारा आज का यह रूप मुझे प्रत्यक्ष रूप से बता रहा है गुलचीं कि तुम अपने प्रेम के नीचे स्वार्थ का काला ज़हर छिपाये हुये थी! ओह! मैं उसे पहिचान न सका! प्रेम से झूम-झूम कर हृदय की मादक रागिनी से जिस ज़हरीले साँप को पकड़ कर दूध पिलाया था। उसी ने उन्मत्त हो कर मेरी उँगुलियों में काट लिया। ओह! भगवान, दुनिया का यह स्वरूप! मेरी अज्ञान आँखें कितनी भूली हुई थीं!!

गुलचीं लाल हो गई! उसकी आँखों में क्रोध का गहरा तूफ़ान गरज उठा! उसने हृदय की सारी कठोरता अपने अधरों पर बटोर कर उत्तर दिया—आनन्द बाबू, अब अधिक

बातें न कीजिये। सीधे अपना सा मुँह लेकर मेरे मकान के बाहर निकल जाइये! मैं आप से एक भी बात करना पाप समझती हूँ! क्या आपने वेश्याओं के प्रेम को एक दो पैसे की चीज़ समझ लिया था? इसके लिये आपने जितना मूल्य चुकाया है, वह अधिक नहीं थोड़ा ही है।

आनन्द कुमार की आँखों में विवशता नाच उठी! रग-रग में करुणा-मयी वेदना नाचने लगी! पर गुलचीं के ऊपर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं। आनन्द कुमार ने उस की इस दृढ़ता को देखकर, विवशी बन कर कहा—तो क्या अब मैं अपने मकान में भी नहीं रह सकता? अपनी किसी चीज़ को हाथ से नहीं छू सकता?

आप कितने नादान हैं आनन्द बाबू, गुलचीं बोल उठी—क्या आपको याद नहीं कि आपने सारी सम्पत्ति मेरे हाथों में बेच दी है। आप की सब चीज़ों पर अब मेरा अधिकार है! आपके दुर्गुणों को देख कर मैं यह नहीं चाहती कि आप अब मेरी सम्पत्ति को अधिक दिनों तक कलंकित करें! इस लिये मेरी आज्ञा के विरुद्ध अब आप को कोई अधिकार नहीं कि आप उस मकान में रहें और उसकी चीज़ों का अपनी आवश्यकता में उपयोग करें!

आनन्द कुमार की आँखों से आँसू निकल आये! वेश्या के

वे चारों

प्रेम में लुट कर उसके दरवाज़े से भिखारी की भाँति निकल आये। ज़र्मान है, मकान है, पर अब उसका उन पर कुछ भी अधिकार नहीं। बेचारे पैसे-पैसे के लिये मुहताज हो गये। सड़कों और बाज़ार की गलियों-गलियों में 'दाता की जय हो' की आवाज़ लगाने के अतिरिक्त, अन्य कोई साधन ही नहीं रह गया। वेश्या-प्रेम का परिणाम, इसको छोड़ कर और हो ही क्या सकता है?

—पन्द्रह—

आधी रात के रव शून्य संसार में भी, प्रयाग के उस टूटे-फूटे घर में भयंकर विद्रोह की धीमी-धीमी आवाज़ आ रही है ! कभी कोई कहता है, हरामज़ादा, तो कभी आवाज़ आती है बदमाश ! कभी बड़ी करुणा के साथ कोई पुकार उठता है 'हाय मार डाला' तो कभी कोई डाँट कर कहता है, चुप रह नादान ! लोग निद्रा संसार में विचरण कर रहे हैं ! इन दो प्राणियों की किसी को चिन्ता नहीं !! आस-पास, अड़ोस-पड़ोस

के रहने वाले, इनके व्यवहारों से बिल्कुल ऊब उठे हैं! जब से मुहल्ले में दोनों आये हैं, रोज़ ही आपस में लड़ाई-दंगा, झगड़ा-फ़साद किया करते हैं। लोग चाहते हैं, दोनों मुहल्ला छोड़ कर और कहीं जा बसें! पर वे छोड़ने क्यों लगे? लोग दोनों का रूप देख कर कहा करते हैं, स्त्री-पुरुष तो नहीं मालूम होते। अवश्य वह उसे भगाकर ले आया है। इसीलिये तो उस पर पशुओं का सा अत्याचार करता है।

पर वह चिथड़ों से लिपटा हुआ अब भी आ रहा है—अब भी वह अपनी आँखों का ऊपर उठाकर आकाश में चमकते हुये चन्द्रमा की ओर देख रहा है! ऐसा ज्ञात होता है, मानों वह अपनी अतीत-चिन्ता में डूबा हुआ मन ही मन कुछ सोच रहा हो। सहसा, पास के मकान से आई हुई एक धीमी चीख़ को सुन कर वह उठ कर बैठ गया। और कान लगा कर उसी ओर चल पड़ा। पर भिखारी चिथड़ों से लिपटा हुआ, कोई चोरी में फँसा दे तो! पर चोरी करने तो जाता नहीं, ईश्वर सहायता करेगा...वह जल्दी-जल्दी पग बढ़ा कर दरवाज़े के पास पहुँच कर सावधानी से सुनने लगा।

"दुष्ट! हरामज़ादे!! किसी एक ने उत्तेजित होकर कहा—मेरी मान-मर्यादा को जहन्नुम में डालकर अब भागना चाहता है! पर मैं तुम्हें इस तरह न जाने दूँगी। उन्हीं पापी हाथों से,

जिनके द्वारा मैंने तुम्हारी सम्मति से अपने भोले-भाले पति को विष की रोटियाँ खिलाई थीं, तुम्हारा भी लहू निकाल कर हृदय को शीतल करूँगी !!

"बस ! बस !! दूसरे ने उसे झिटक कर उत्तर दिया—अब अधिक ज़बान न चला ! मैं तुम्हारा वह 'पति' नहीं, जिसने तुम्हारी ऐसी बदज़ाद स्त्री के प्रेम में भूल कर अपने मानवी अस्तित्त्व को भी गँवा दिया था । मेरा नाम है रज़ा ! एक मिनट में ही तुम्हारे पापी जिगर का रक्त पान कर सकता हूँ । यह देख लपलपाता हुआ, छुरा ! अभी जिगर में घुसेड़ कर प्राणों को बाहर खींच लूँगा !

स्त्री आह मार कर चीख़ उठी ! तो क्या उस पर छुरे का वार ! भिखारी चंचल हो उठा ! उसने दरवाज़े पर ज़ोर का धक्का लगाया ! पर उसके घर में भीतर जाने को पहिले ही अत्याचारी 'रज़ा' उसे मूर्च्छित कर बाहर निकल गया । भिखारी ने उसके पकड़ने को थोड़ा सा प्रयत्न किया ! पर उसके हाथ में तीव्र धार का छुरा ! वह अलग हट गया और विद्रोही स्वतन्त्रता पूर्वक, सुरक्षित स्थान में चला गया !

धुँधले दीपक का क्षीण प्रकाश ! पुराने मकान की टूटी-फूटी दीवालें ! एक टूटी चारपाई, फटी हुई दरी । दो चार पुराने बर्तन और कोने में एक बक्स ! ऐसा जान पड़ता था,

मानों वासना के दो पुतले अपने अज्ञानता का भयंकर अभिशाप भोग रहे हों ! भिखारी थोड़ी देर के लिये चंचल हो उठा। फिर उसने स्त्री के शरीर की परीक्षा कर के देखा—घाव साधारण है !" वह उसे होश में लाने की चेष्टा करने लगा।

कुछ देर के बाद स्त्री, सावधान होकर अपने आप बोल उठी—पकड़ो ! कहाँ गया ! वह विद्रोही है, विश्वास-घातक है ! उसने मेरे हाथों से मेरे पति को ज़हर दिलाया है। मैं भी उसका खून पीऊँगी—उसे जहन्नुम में पहुँचाऊँगी !

भिखारी रो उठा। उसकी आँखों में वेदना की एक लहर दौड़ पड़ी। उसने हृदय की सारी करुणा बटोर कर उत्तर दिया बहन ! अब इस भाँति प्रलाप करने से कुछ भी न होगा। यह संसार है, रोज़ ही इसकी छाती पर ऐसी भयंकर घटनायें घटा करती हैं ! उठो, अपने को सँभालो, और बताओ मैं तुम्हें कहाँ पहुँचा दूँ ?"

"भाई—उसने उत्तर दिया—मैं तुम्हारी बातों का क्या जवाब दूँ। कहाँ तुम्हें पहुँचाने को कहूँ ! वर्षों हो गये, मैंने अपनी दुनिया, अपनी अज्ञानता से उजाड़ डाली—अपने भोले-भाले पति को ज़हर देकर मार डाला। ओह ! वह बेचारा, मेरे प्रेम के लिये किस भाँति तड़पता रहता था—किस भाँति, अपने प्राणों को, हथेली पर रखकर, मेरी आँखों के सामने उछाला

करते थे, पर मैं उनसे एक बार हँस करके भी न बोली। हाय ! मेरे वे भयंकर पाप !! मैं आप ही जा रही हूँ भाई !! मुझे ले चलो, जेल की यातनामयी कोठरी में डाल दो। वही. मेरे पापों के प्रायश्चित का स्थान

भिखारी ने देखा, स्त्री का मस्तिष्क धीरे धीरे विकल हो रहा है—उसके विचारों का तूफान, उसे घसीट कर बरबस उस ओर लिये जा रहा है, जहाँ पहुँच कर लोग पागल हो जाते हैं, भिखारी ने बड़ी सावधानी से उसकी अवस्था सँभालते हुये उत्तर दिया—बहन ! चिन्ता न करो !! उस विश्वासघाती नराधम को मैंने पुलीस के सिपुर्द कर दिया है। वह इस समय जेल की कोठरी में पड़ा हुआ भयंकर यंत्रणायें सहता होगा !!

''न भाई ! स्त्री बोल उठी—यह तुमने अच्छा काम किया ! उस नराधम को अवश्य भयंकर दण्ड मिलना चहिये। मेरे रोम-रोम इसके लिये तुम्हें आशीर्वाद दे रहे हैं। पर यह तो बताओ, तुम कौन हो ? और कैसे यहाँ आये !!

भिखारी ने थोड़ी देर तक चुप रह कर उत्तर दिया—भिखारी !! चिथड़ों में लिपटा हुआ, यहीं सड़क के किनारे पास ही पड़ा था। तुम्हारी दर्द भरी चीत्कार सुनी और दौड़ा हुआ यहाँ तक चला आया—भिखारी कहते-कहते रो उठा। उसकी आँखों से, दो बूँद आँसू ढुलक कर भूमि पर गिर पड़े !!

"भिखारी ! स्त्री ने हँस कर कहा—किन्तु तुम तो भिखारी नहीं मालूम होते हो भाई ! ऐसा जान पड़ता है मानों करुणा के बड़े धनी हो !!

भिखारी चुप रहा ! मानों वह कुछ सोच रहा हो !! स्त्री ने उसकी ओर करुणा भरी निगाह से देख कर कहा—अच्छा मेरे भिखारी भाई, क्या तुम मुझे भिखारिणी बना लोगे ! मैं भी तुम्हारे साथ चिथड़ों में मुँह छिपाकर सड़क की पटरियों पर पड़ी रहूँगी !"

भिखारी क्या उत्तर देता ? उसने गम्भीरता से शिर ऊपर उठाकर, करुणा की गहरी साँस के साथ कहा—बहन ! मैं तुम्हारी सेवा करने के लिये हर एक तरह से तैयार हूँ।"

रात में, जब आकाश से चाँदनी की धारा बरस रही थी—सारा संसार अठखेलियाँ कर रहा था—घायल स्त्री भिखारिणी के रूप में घर से निकल कर सड़क पर खड़ी हो गई ! दूसरे दिन प्रातःकाल जब उस मुहल्ले के लोग सो कर उठे तो देखा, टूटे-फूटे मकान का दरवाज़ा खुला है ! चीज़े पड़ी हैं ! और थोड़ी दूर की पृथ्वी रक्त से लाल हो गई है। लोगों ने इस रहस्य को जानने की बहुत चेष्टा की, पर उनके मन का आश्चर्य चिर दिनों तक न मिटा ! न मिटा !!

—सोलह—

उस दिन, सविता ने अपनी स्वयंसेविका सहचरियों के साथ जब नमक बनाने का काम किया, तो वह भी उन्हीं के साथ ही साथ जेल की यात्रिणी बन गई ! उसे एक वर्ष का कारावास मिला था। पर उसमें वह इलाहाबाद के नैनी जेल से छूटी, नियमित रूप से प्रयाग में ही रहने लगी है ! इसकी सहचरियाँ, उसे बड़ी सहायता देती हैं ! कुछ विचार-शील सज्जनों के उद्योग से, उसे एक स्कूल में, लड़कियों के पढ़ाने का

काम मिल गया है। वह अपना काम बड़ी संलग्नता से करती है! दुखियों तथा सार्वजनिक संस्थाओं की सेवा में उसे बड़ा आनन्द मिलता है। वह अपना अधिक समय, सेवा के ही काम में लगाया करती है! वह सदैव प्रसन्न रहती है, पर किसी-किसी समय उसके हृदय पर वेदना की एक गहरी छाया भी डोल जाती है! ऐसा मालूम होता है, मानो उसके जिगर में अतीत स्मृति के काँटे गड़ जाते हों!!

वह एक साफ़-सुथरे और सम्भ्रान्त मनुष्यों के मुहल्ले में रहती है। अपने काम से काम! उसका काम तो सेवा करना है। लोग उसे तपस्विनी कहा करते हैं। कभी-कभी वह गंगा भी तो नहाने जाती है। पर बहुत कम! उस दिन, प्रभात के प्रथम युग में, जब सब लोग सो रहे थे, वह अपने घर से गंगा स्नान के लिये निकली तो तम्बूरे की मादक स्वर-लहरी ने उसके पैरों को जकड़ लिया! डराने वाले का स्वर भी तो बड़ा ही करुणा-पूर्ण था। उसकी संगीत में भी तो बड़ी वेदना घुली हुई थी! वह वेदनामयी संगीत, तम्बूरे के मादक तारों से छिटक कर मानो, करुणा की धारा बरसा रही हो! सविता अपने द्वार पर रुक गई। उसका मन। "जग में कोई नहीं है अपना" बार-बार दुहराने लगा। वह सोचने लगी—कौन इस प्रभात काल में, वेदना के रूप में, अपने जिगर के टुकड़ों को अधसोये

संसार के सामने बिखर रहा है, सचमुच वे जिगर के टुकड़े ही हैं। जो कुछ गाता है, बिल्कुल सच! उसके ऊपर बीत चुकी है न !! पर किसे सुना रहा है, अपने दिल की व्यथा ? संसार को !! नहीं, वह संसार की दीवाल पर, अपने वेदनामयी स्वरों की गहरी ठोकर लगाकर उसमें से एक सच्ची प्रति ध्वनि निकालना चाहता है !! वह सोचता है, न स्वर संसार की दीवाल से नकचाई हुई मेरी 'प्रतिध्वनि' मेरे जीवन मदारी के पास पहुँच सकेगी—वह उसकी सच्चाई को भाँक कर; मेरी वेदना पर अवश्य करुणा के दो बूँद ढुलका देगा !!

सविता सो रही थी—तारों की मादक स्वर लहरी उसके हृदय पर एक अनूठा जादू सा डाल रही थी। पर उसे अधिक देर तक सोचने का अवसर न मिला। उसकी विचार शील आँखें गली के मोड़ पर जाकर रुक गई ! उसने देखा—शिर पर जटाओं का जूड़ा बँधा है, गोरे शरीर पर कषाय वस्त्र ! उँगलियाँ तारों पर थिरक रही हैं। तारों से वेदना की स्वर लहरी धीरे-धीरे छिटक कर जगत को आत्म विस्तृत सा बना रही है। पर प्रकृति स्नेह के रस में सनी हुई आँखें कब चूकने लगी। चिल्ला उठी—सुशील ? सविता ने भी अपने आँखों की आवाज मुँह से दुहराई—सुशील, क्या सन्यासी ?

सन्यासी ने सविता की ओर आँख उठा कर देखा ! वह

अब उसके अधिक निकट आ चुका था। दोनों, आँखें एक दूसरे से मिल गईं। आँखों में प्रेम, हृदय में करुणा, जिगर में पीड़ा, एक साथ ही सब की सब मानवी भावनायें दोनों में समा गईं। सन्यासी ने बड़ी वेदना के साथ उत्तर दिया—हाँ सविता ! सुशील सन्यासी !!

दोनों की आँखों में आँसू के सागर उमड़ पड़े। वे आँसू, हृदय के वे आँख थे जिनमें प्रेम, करुणा, चाह और उत्कंठा की उन्माद मयी परियाँ मणियों की भाँति झलका करती हैं ! उस प्रभात काल में जिन-जिन लोगों ने, सन्यासी के साथ ही साथ, सविता के आँखों से भी आँसू के झरने झरते हुए देखे, उनके दिलों में कैसी-कैसी भावनायें जागृत हुई ? यह कौन जाने ?

—सत्रह—

त्रिवेणी के तट पर, मुग़ल सम्राट अकबर के बनवाये हुए महान् दुर्ग के ठीक नीचे एक घास-फूस की कुटिया बनी हुई है! उसमें वे दोनों बड़े सुख से रहते हैं! शहर से माँग कर लाते हैं, खाकर सो जाते हैं! दोनों भाई बहन से हैं! संसार चाहे जो समझे! उसके समझने से होता है क्या? वह उसे भिखारी भाई और वह उसे भिखारिणी बहन कह कर पुकारता है! दोनों में बड़ा स्नेह भी है! पर भाई-बहन जैसा! दोनों

वे चारों

साथ-साथ रहते हैं!! पर एक दूसरे के सम्बन्ध में अभी तक अनभिज्ञ हैं ! जानने की चेष्टा ही न की होगी ! दोनों दुःखी हैं—अपनी-अपनी आन्तरिक वेदना से जलते रहते हैं !!

प्रभात काल की सुनहली किरणें यमुना और गंगा के संगम पर खेल रही हैं । मन्द-मन्द वायु चल रही है। छोटी-छोटी लहरों के साथ वह छोटी ही नौका थिरकती हुई आगे बढ़ी जा रही है और उस पर केवल तीन ही आदमी तो बैठे हैं। सविता, सुशील और मल्लाह ! पर मल्लाह नौका खेने में व्यस्त है। उसे किसी की चिन्ता क्या ? पर वे दोनों एक दूसरे की ओर बड़ी करुणा के साथ देख रहे हैं ! जब से उस दिन सुशील का सन्यासी के रूप में सविता से परिचय हुआ ! दोनों साथ ही साथ रहने लगे हैं ! लोग दोनों को एक साथ देख कर आश्चर्य करते हैं ! दुनिया है न । सच को झूठ समझती है और झूठ को सच ! सविता से उसकी कुछ सहचरियाँ सवाल भी करती हैं ! सन्यासी बाबा तुम्हारे कौन हैं ? वह कह देती है मेरे भाई और कह ही क्या सकती है ? इसी भाई बहन के सम्बन्ध में बँध कर दोनों दुनियाँ की आँखों के सामने स्वतन्त्रता पूर्वक घूमते हैं ! नहीं तो पागल दुनिया ! उसे शुभ चरित्र पर कलंक का छींटा फेंकने में देर क्या लगती है ?

दोनों सायंकाल में भी घूमते हैं और प्रभात में भी ! कभी

पैदल किसी जन्य-शून्य बाटिका में चले जाते हैं और कभी गंगा यमुना की गोद में हिलती हुई नाँव पर बैठ कर सैर करते हैं। पर दोनों उदास रहा करते हैं—दोनों के मन में मानों एक वेदना सी है !

नाँव पर बैठी हुई सविता ने, उसकी ओर देख कर पुकारा—सुशील !

सुशील ने सविता की ओर निहार कर उत्तर दिया—सविता, मैं सुशील नहीं संन्यासी हूँ। तुम मुझे संन्यासी ही कह कर पुकारा करो !!

अच्छा भाई संन्यासी !—सविता ने कहा—क्या यमुना के इस पवित्र जल पर फिर कभी मुझे इस नौका में बैठ कर मेरी एक बात का सच-सच उत्तर दोगे ?

क्यों नहीं—सविता !—सन्यासी ने उत्तर दिया—जो कुछ पूछना हो पूँछो न ! भरसक कोई बात तुमसे छिपाने की चेष्टा न करूँगा !"

यदि ऐसी बात है, भाई—तो बताओ तुम सन्यासी क्यों हुए ? सविता ने कहा—

सन्यासी रोने लगा ! उसकी आँखों में आँसू भर आये ! उसने रुधे हुये स्वर में उत्तर दिया—इस कहानी को पूँछ कर वेदना की आग हृदय में न धड़काओ सविता ! वह एक लम्बी

कथा है। पर तुम्हें न बताना भी तो पाप होगा! अच्छा सुनो, मैं तुम्हे सुनाता हूँ। जिगर थाम कर सुनो!

सन्यासी कहने लगा! सविता सुनने लगी! उसके वेदना का यह करुणामय इतिहास उसके जीवन का यह दर्दनाक चित्र! सविता का हृदय तड़प उठा! उसने आँखों में प्रेम के टुकड़े भर कर कहा—तो क्या तुम्हारी स्त्री 'रमा' ने तुम्हें सचमुच ज़हर दे दिया था?

नौका किनारे पर आ चुकी थी! मल्लाह के कानों में धीरे से ज़हर शब्द पड़ा! वह आँखें उठा कर उन दोनों की ओर आश्चर्य से देखने लगा! किनारे पर मिट्टी के घड़े में पानी भरती हुई भिखारिणी के हृदय में भी! 'रमा' शब्द ने हलचल की एक आँधी उत्पन्न कर दी! उसने शिर ऊपर उठा कर देखा! उसके हाँथों का घड़ा छूट कर पानी में गिर पड़ा। वह सहसा चिल्ला उठी—हाँ, सचमुच 'रमा' ने अपने भोले भाले पति को ज़हर दिया था! फिर मुख से एक चीख़—और बे सुध हो कर भूमि पर गिर पड़ो! सविता कुछ न समझ सकी! वह समझ क्या सकती थी? मल्लाह भौचक्का सा बन गया और सुशील! वह एक छलाँग में नाँव से कूद कर भिखारिणी के पास जा पहुँचा और उसके शिर पर हाथ धर कर कहने लगा—रमा! जागो—आँखें खोलो! मैंने तुम्हारे अपराधों को क्षमा कर

इया ! पर अब रमा कहाँ ? उसके प्राण-पखेरू अन्तर्वेदना की
हरी ठेस से उड़ गये—उड़ गये !!

पास ही, फूस की कुटिया में बैठा हुआ भिखारी भिखारिणी
की चीख सुन कर दौड़ पड़ा !! उसकी आँखों ने भिखारिणी
को तो न देखा, पर उसका झुका हुआ मस्तक एक क्षण में ही
नविता के चरणों में जा पड़ा ! और वह ओठों पर पश्चात्ताप
की सच्ची पवित्रता प्रकट कर कहने लगा—देवी, अपराधी
आनन्द को क्षमा करो, देवी वह अपने भयंकर पाप का ही
ो यह फल भोग रहा है ! उसे बचाओ, उसे अपनी शरण
ं लो !

संन्यासी का हाथ प्राण-हीन 'रमा' के मस्तक पर था और
सविता का आनन्द बाबू के !! दोनों रो रहे थे—दोनों की आखों
में करुणा नाच रही थी, पर करुणा की इस ममता मयी दुनिया
ा, रमा के शव के पास एकत्रित हुये मनुष्यों को पता लगा या
यह कौन जाने ?

|| समाप्त ||